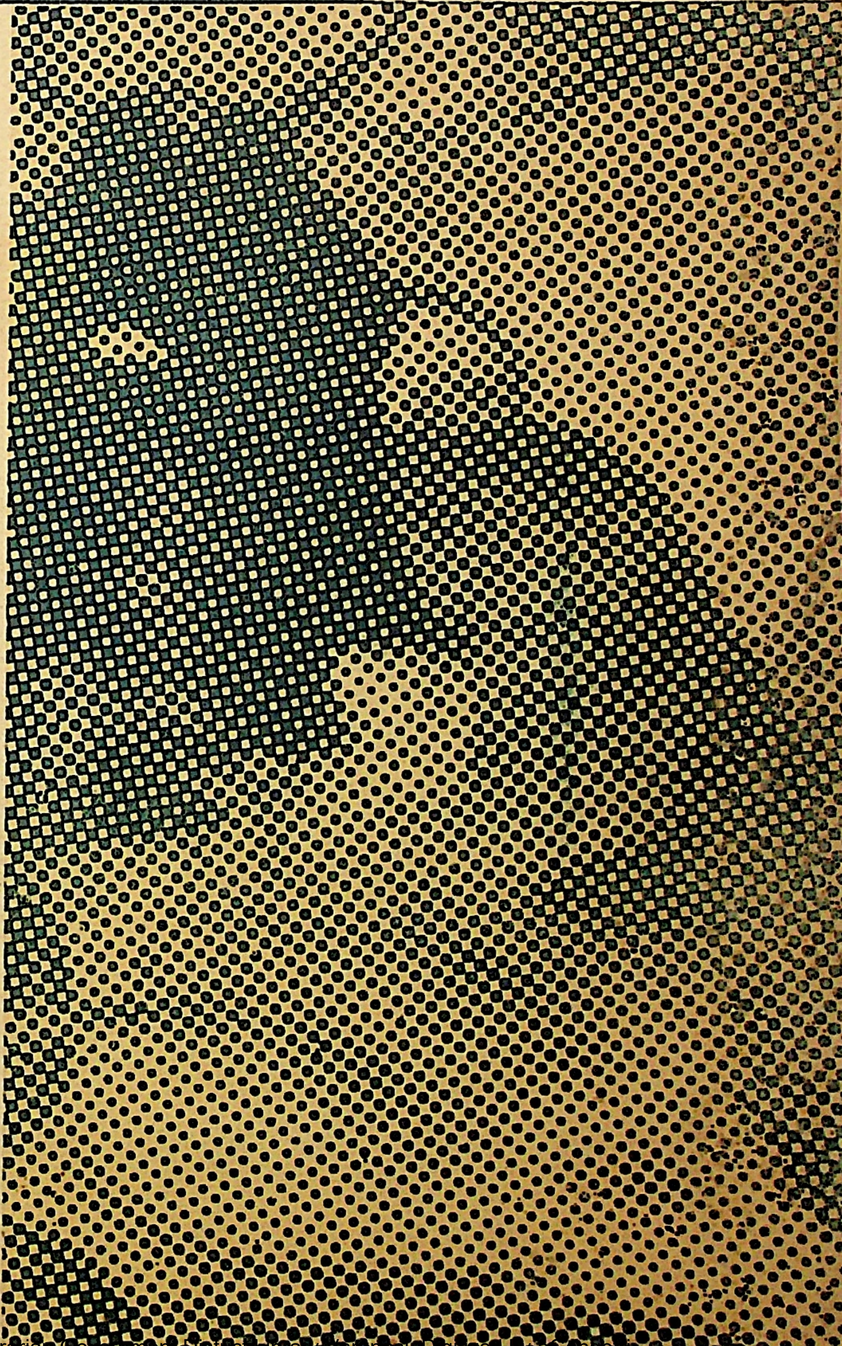
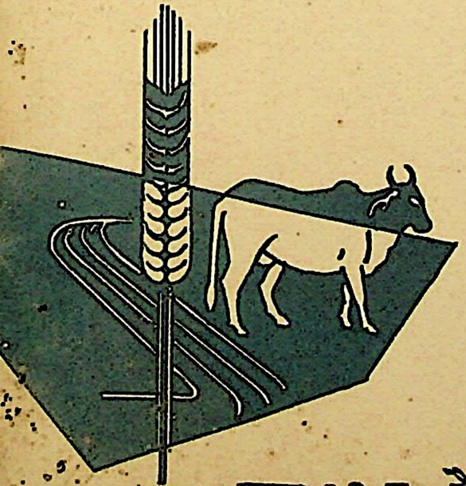
कृषि और पशुपालन

गोसम्वर्धन अंक

नवम्बर

१९६२





मूल्य ६२ न० पै०

कृषि और पशुपालन

उत्तर प्रदेश सरकार के कृषि, कृषि इन्जीनियरिंग, पशुपालन तथा गन्ना विकास विभाग की मुख पत्रिका

वर्ष १३ नवम्बर, १९६२ अंक ५

१—इस पत्रिका में प्रकाशित लेख, रजिस्टर्ड समाचार पत्रों तथा अन्य पत्र पत्रिकाओं में बिना अनुमति के प्रकाशित किए जा सकते हैं। किन्तु इस पत्रिका का उल्लेख करना और जिस अंक में लेख उद्धृत किया जाय, उसकी एक प्रति सम्पादक के पास भेजना आवश्यक है।

२—इस पत्रिका में प्रकाशित उन लेखों के लिए जो विभागों के बाहर के लेखकों द्वारा लिखे गये हैं या जो अन्य पत्र पत्रिकाओं से उद्धृत किये गये हैं, विभाग उत्तरदायी नहीं है।

वार्षिक मूल्य ८)

[redacted]

[redacted]

प्रकाशक:—

प्रसार, शिक्षा एवं प्रशिक्षण ब्यूरो, कृषि विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

कृषि और पशुपालन

'गो-सम्वर्धन अंक' नवम्बर, १९६२

विषय-सूची

—o—

संन्देश एवं शुभ कामनायें

राज्यपाल शिविर,
उत्तर प्रदेश
११ अक्टूबर, १९६२.

प्रदेशीय जनता से मैं गोपाष्टमी दिवस को उचित ढंग से मनाने तथा अपने गोधन के विकास एवं सुधार के कार्य में लग जाने का व्रत लेने की अपील करता हूं। हमारा धर्म तथा हमारी राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था हमको गो सेवा का आदेश देती है। देश के गो धन के बिना कोई पूर्ण पारिवारिक जीवन, कृषि, दूध तथा दूध से बने पदार्थ सम्भव नहीं। गोधन कृषि एवं जनता के पोषण दोनों ही के लिए आवश्यक है। यह खेद का विषय है कि हमने गो सेवा के नैतिक तथा धार्मिक आदेश और इस सेवा से जो सामाजिक एवं आर्थिक लाभ होते हैं, उनको भूल कर अपने देश के गोधन को भूखा तथा निर्बल रख कर पशुओं के रहने के स्थानों तथा चरागाहों पर अधिकार जमा लिया है।

इसलिये आपसे गोपाष्टमी सप्ताह को धार्मिक उत्साह एवं उचित ढंग से मनाने की अपील करते हुए मैं यह और कहना चाहता हूं कि आप गावों में पशुशालाओं तथा चरागाहों को सुरक्षित रखने और साथ ही साथ गोधन के उचित रख-रखाव के लिये चारे की फसलें पैदा करने एवं चारे को सुरक्षित रखने के लिए आवश्यक कदम उठाने का भी व्रत लें।

विश्वनाथ दास
राज्यपाल, उत्तर प्रदेश।

लखनऊ
अक्टूबर २०, १९६२

मुझे यह जानकर हर्ष है कि इस प्रदेश में गोपाष्टमी सप्ताह २९ अक्टूबर से ५ नवम्बर १९६२ तक मनाया जा रहा है। यद्यपि हम दूध तथा उसके पदार्थों का प्रयोग करते हैं और गाय को श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं परन्तु हम अपने पशुधन के स्वास्थ्य तथा सुधार की ओर बहुत ही कम ध्यान देते हैं। यह अन्यायपूर्ण तथा अवांछनीय दोनों ही है। मुझे आशा है यह सप्ताह सभी सम्बन्धित व्यक्तियों का ध्यान इस महान् समस्या के प्रति आकर्षित करेगा।

इस अवसर पर मैं समारोह की सफलता के लिये शुभ कामनाएं भेजता हूँ।

चन्द्रभानु गुप्त
मुख्य मन्त्री, उत्तर प्रदेश

गोपाष्टमी समारोह का हमारे ग्रामीण जीवन में एक विशेष महत्त्व है। भारतवर्ष एक कृषि प्रधान देश है और कृषि के लिये बैलों का होना अनिवार्य है। दूध मनुष्य के लिए एक पौष्टिक पदार्थ है। अतएव हमारे पूर्वज अतीत काल से दीपावली पर्व के साथ पशु, मुख्यतः गो-वंश की ओर विशेष ध्यान देने के हेतु एक दिन गो-वर्धन के नाम से मनाते रहे हैं। अपने आर्थिक जीवन की इस आवश्यकता और अपने समाज की इस भावना को आधार मानकर, सरकार गत १०-११ वर्षों से दीपावली के बाद एक सप्ताह गोपाष्टमी या गो-सम्वर्धन के नाम से मनाती आ रही है। इस वर्ष यह सप्ताह २९ अक्टूबर, १९६२ से आरम्भ होकर ५ नवम्बर, १९६२ तक मनाया जायगा।

हमारे देश और प्रदेश में बहुत थोड़ी-थोड़ी जमीन एक किसान परिवार के हिस्से में आती है। यों तो छोटी-छोटी जोतों के लिए भी अन्य देशों में छोटे-छोटे ट्रैक्टर निर्माण किये गए हैं परन्तु यह उचित हो तो भी हमारे देश में कम से कम कई दशाब्दियों तक ट्रैक्टर बैलों का स्थान नहीं ले सकते। ट्रैक्टरों से गोबर नहीं मिलता जो खेतों की उर्वरा शक्ति बढ़ाता है। ट्रैक्टरों से सारे देश में खेती होने लगे तो उसके लिए हमारे पास तेल भी नहीं है। वैसे भी ट्रैक्टर बैलों की अपेक्षा अधिक कीमती पड़ते हैं। इसके अतिरिक्त, दूध की समस्या वैसी की वैसी ही बनी रहती है। दूध के लिए गाय चाहिये और जब गाय आवश्यक है ही तो उससे हमको बछड़े भी मिल सकते हैं।

हमारे देश में संसार के प्रायः सभी देशों के मुकाबले भूमि को देखते हुये जानवरों की संख्या बहुत अधिक है। परन्तु हमारे जानवर उतने दुधारु नहीं हैं जितने अन्य कुछ देशों के। उदाहरणार्थ, भारतवर्ष की गाय औसतन रोजाना २ सेर दूध देती है जबकि संयुक्त राष्ट्र अमरीका की गाय २० सेर देती है। परन्तु १० कमजोर या खराब किस्म की गायें भी अच्छी से अच्छी एक गाय की अपेक्षा अधिक चारा खाती हैं और हमारे यहां १०-५ देशों को छोड़कर संसार के प्रायः सभी मुल्कों के मुकाबले प्रति व्यक्ति जमीन वैसे ही कम है। एक ओर जमीन बढ़ नहीं सकती और दूसरी ओर, मनुष्यों और जानवरों की संख्या बराबर बढ़ रही है। अतएव, इसके लिए आवश्यक है कि हमारी गाय तथा अन्य जानवरों की नस्ल तो सुधरे परन्तु तादाद घटे। नस्ल सुधारने का सबसे अच्छा उपाय यह है कि रद्दी किस्म के सांड़ों को बधिया किया जाय और अच्छे से अच्छे सांड़ उनके स्थान में उपलब्ध किए जायें। परन्तु, जितने अच्छे सांड़ों की आवश्यकता है उतने हमारे देश या प्रदेश में नहीं हैं। इसलिए कृत्रिम गर्भाधान की तरकीब विशेषज्ञों ने निकाली है। इस विधि के जरिये एक सांड़ १० सांड़ों का काम दे सकता है। किसानों को चाहिए कि वह इस योजना से अधिक से अधिक लाभ उठायें।

पशु-पालन विभाग के सम्मुख दूसरी समस्या है पशुओं के लिए अच्छे चारे की—ऐसा चारा जो एक बीघे में वजन में अधिक पैदा हो और साथ ही जिसमें जानवरों का दूध और उनकी हड्डी बढ़ाने वाला पोषण तत्व अधिक से अधिक मौजूद हो। इस दिशा में राज्य के विशेषज्ञ अनुसंधान करने में लगे हुये हैं। इस अनुसंधान में कितनी सफलता मिली अथवा उसमें क्या-क्या रुकावटें हैं उन सबका यहां उल्लेख करने से बात लम्बी हो जायगी जिसका कि यह अवसर नहीं है।

तीसरी बात जिस पर पशु-पालन विभाग जोर दे रहा है या अधिक ध्यान दे रहा है वह है पशुओं के रोगों का इलाज। इसके लिये गवर्नमेन्ट पशु-चिकित्सालयों की तादाद बढ़ा रही है।

मेरा किसानों से निवेदन है कि इस गोपाष्टमी सप्ताह के सिलसिले में जो प्रत्येक जिले में उपरोक्त तिथियों में पशु-प्रदर्शनियां की जा रही हैं, उनमें अधिक से अधिक संख्या में भाग लें। गवर्नमेन्ट चाहती है कि किसानों में अपने जानवरों की नस्ल को सुधारने आदि के विषय में उतनी ही परस्पर होड़ लग जाय जितनी कि कहीं-कहीं पर खेती की पैदावार बढ़ाने के सिलसिले में लग चुकी है क्योंकि जानवरों की नस्ल का सुधारना हमारे देश के आर्थिक विकास के लिये उतना ही आवश्यक है जितना कि खेती की पैदावार का बढ़ाना।

चरण सिंह

कृषि मंत्री, उत्तर प्रदेश।

हमारे कृषि प्रधान देश में आदिकाल से पशुओं का बड़ा महत्व रहा है। पशुधन में गाय तथा उसकी संतति हमारे आर्थिक जीवन का अंग बन गई हैं। इसकी महत्ता से प्रभावित होकर पूर्वजों का ध्यान पशुधन के विकास की ओर गया। हम सदैव से गाय तथा अन्य दुधारु पशुओं के ऋणी हैं, क्योंकि हमें उनसे खाद, शक्ति एवं उनके दूध और उससे बने पदार्थों से स्वास्थ्य लाभ होता है। एतदर्थ हम गाय और उसकी संतति पर विशेष रूप से निर्भर हैं।

इसी भावना से प्रेरित होकर हमारी प्रदेशीय सरकार ने १९५३ से सारे देश में गोपाष्टमी सप्ताह मनाना आरम्भ किया। जनता के सहयोग एवं उत्साह को देखकर प्रति वर्ष पशु पालन तथा पंचायत राज विभागों द्वारा प्रदर्शनियां हो रही हैं। इनमें गोष्ठियों और सभाओं का भी आयोजन किया जाता है जिनमें पशुपालन के विविध अंगों जैसे रोगों की रोकथाम, नस्ल सुधार, उपयुक्त भोजन तथा अन्य प्रबन्ध के विषय में वादविवाद होता है और स्थानीय समस्याओं की पूर्ति की जाती है।

इन सब उत्सवों में अंतर्निहित भावना केवल यही है कि हम अपने आर्थिक जीवन में गो तथा अन्य दुधारु पशुओं के महत्व को समझें और पशुओं को आधुनिक ढंगों से सुधारें जिससे हमारा पशुधन एक बार फिर से संसार में गौरवान्वित होकर खोई हुई ख्याति प्राप्त करे। इसी भावना से हम गोपाष्टमी के पुण्य पर्व को मनाते हैं।

मुझे आशा है कि "गोपाष्टमी सप्ताह" हमारे सारे प्रदेश में बड़े उत्साह और वैभव के साथ सम्पन्न होगा।

अलगूराय शास्त्री

अलगू राय शास्त्री
धनमन्त्री, उत्तर प्रदेश।

मुझे यह जानकर बड़ा हर्ष हुआ कि गोपाष्टमी सप्ताह के अवसर पर पिछले कई वर्षों से जो विशेषांक आप निकाल रहे हैं उसका जनता में स्वागत हुआ है।

"गौ" युग युगान्तर से भारतीय संस्कृति का प्रतीक रही है। आज भी हमारी सम्पूर्ण ग्रामीण अर्थ व्यवस्था की शिलाधार गौ है। देश के स्वास्थ्य की उन्नति में भी इसका बड़ा योग है।

गोपाष्टमी सप्ताह के द्वारा गौ के आर्थिक एवं सामाजिक महत्व को समझाने का आपका प्रयास अत्यन्त सराहनीय है। हमें गौ पूजन के साथ ही सच्चे अर्थ में गौ सेवक भी बनना है तभी गौ धन की उन्नति कर देश एवं समाज का कल्याण किया जा सकता है।

मैं आप के विशेपांक की सफलता की कामना करती हूँ।

सुचेता कृपालानी

सुचेता कृपालानी

श्रम एवं सामुदायिक विकास मंत्राणी,
उत्तर प्रदेश।

मुझे यह जानकर हर्ष हुआ कि कृषि विभाग की मुख पत्रिका "कृषि और पशु पालन" पिछले वर्षों की भांति इस वर्ष भी गोपाष्टमी सप्ताह के अवसर पर एक विशेषांक निकलने जा रही है।

गो वंश की उन्नति और विकास पर ही देश की उन्नति बहुत हद तक निर्भर है क्योंकि हमारा देश कृषि प्रधान है और यहां की आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था ऐसी है कि हम केवल यंत्रों पर ही निर्भर रहकर कृषि में उन्नति नहीं कर सकते। उत्तम कृषि के लिये स्वस्थ बैलों का होना आवश्यक है।

गोपाष्टमी हमारे देश का पुराना पर्व है जिसे स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्रीय स्वरूप दिया गया। मुझे आशा है इस अवसर पर प्रत्येक व्यक्ति गो वंश की समृद्धि के लिये अपना पूर्ण योगदान देगा।

महावीर प्रसाद श्रीवास्तव

जन स्वास्थ्य एवं समाज कल्याण मन्त्री,
उत्तर प्रदेश।

मुझे यह जानकर बड़ा हर्ष है कि सदैव की भांति इस वर्ष भी गोपाष्टमी सप्ताह हमारे प्रदेश में २६ अक्तूबर से ५ नवम्बर तक शासकीय संरक्षण में मनाया जा रहा है।

गौ न केवल दूध और उससे तैयार होने वाले अन्य खाद्य पदार्थों के रूप में हमें अत्यन्त आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करती है वरन् हमारे जैसे कृषि प्रधान देश को कृषि कार्य के लिए बैल और भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाये रखने के लिए खाद भी उपलब्ध करती है। अतः यह आवश्यक है कि हम गौ और उसकी संतति की नस्ल में सुधार करें। हमें जन स्वास्थ्य के लिए दूध और घी जैसे पौष्टिक-पदार्थों की आवश्यकता तो है ही, छोटी छोटी जोतों व किसानों के सीमित साधनों के कारण हमारे देश में बैलों की आवश्यकता भी अभी काफी समय तक रहेगी। गौ सम्बर्द्धन की समस्याओं पर विचार करने और जन-मानस में गौ के प्रति सेवा भाव जागृत करने में गोपाष्टमी सप्ताह का विशेष योगदान है।

दाऊ दयाल खन्ना

मंत्री, गन्ना विकास,
उत्तर प्रदेश।

मुझे यह जानकर हर्ष है कि विगत वर्षों की भांति इस वर्ष भी गोपाष्टमी सप्ताह २६ अक्टूबर से मनाया जायगा। भारत की सम्पूर्ण कृषि प्रधान अर्थ-नीति तथा निरामिष जनता का स्वास्थ्य गाय और उसकी संतति के सुव्यवस्थित पालन पर आधारित है। वह केवल दूध ही नहीं देती वरन् हमारी कृषि को भी सम्भव बनाती है। परन्तु दुख है कि हम भारतीयों ने उसकी पूजा ही की है सेवा नहीं, जिसके परिणाम स्वरूप आज हमारे पशु धन का ह्रास हो रहा है।

आज इस पुनीत समारोह की सफलता की कामना करते हुए मैं चाहूंगा कि देशवासी गाय की सेवा का व्रत लें।

गोविन्द सहाय

कारागार एवं पुनर्वास मन्त्री,
उत्तर प्रदेश।

दुग्ध व्यवसाय और पशु विकास

एम० आर० महाजन

भारत में पशु विकास की योजनाओं की बिक्री पर आवश्यक ध्यान देना चाहिए, क्योंकि पशु पालन वास्तव में दूध आदि की बिक्री के साथ साथ चलता है। पशु पालन का एक आवश्यक पहलू यह है कि विभिन्न जाति के पशु अपने मूल क्षेत्रों में ही सीमित हैं। यह उस जाति में उत्पादन क्षमता बढ़ाने तथा उन्हें सुधारने के लिए आवश्यक है। शुष्क प्रदेश का एक पशु एक भिन्न वातावरण में नहीं पनप सकता है। चूँकि अन्य पदार्थों की तरह पशुओं को एक स्थान से दूसरे स्थानों को नहीं भेजा जा सकता है, इसलिए हर जाति के लिए अलग मंडी की आवश्यकता है। पशुओं को अपने मूल क्षेत्र से हटा कर दूसरे स्थानों को भेजने से स्थायी हानि होगी क्योंकि उनकी पूर्ति सम्भव नहीं है। अतः पशुओं की बिक्री एक पेचीदा मसला है क्योंकि बिना सोचे समझे उनकी बिक्री से अन्त में उत्पादन पर भारी प्रभाव पड़ेगा। क्योंकि हमारे दुधारु पशुओं की उनके मूल क्षेत्र में काफी कमी होती जा रही है।

दुग्ध व्यवसाय से समुचित आय मिलने से किसान या उत्पादक को काफी आमदनी हो सकती है और इससे पशु पालन की नींव दृढ़ होती है। इससे अच्छे दुधारु पशु रखने में बढ़ावा मिलता है जिनसे उसे अधिक लाभ होता है। अच्छे पशु की उत्तम खिलाई पिलाई पर जो कुछ भी खर्च किया जाता है वह अधिक दूध के रूप में और अन्त में अधिक आय के रूप में लौट आता है। वह अपने पशुओं में बन्ध्यता और शुष्क अवधि को

रोकने के लिए अच्छे रखरखाव का प्रबंध करता है। अपने पशुओं को हर पीढ़ी में सुधारने की दृष्टि से वह सांड़ के महत्व को समझता है, वह घटिया पशुओं को छांट कर निकालने तथा प्रजनन के लिए केवल अच्छे पशुओं को ही रखने के महत्व को समझता है, वह अपनी प्रजनन विधियों की सफलता जानने के लिए बच्चा होने का समय, शुष्क अवधि, गर्भाधान तिथि आदि का रिकार्ड रखना सीखता है। इस प्रकार आने वाले वर्षों में ऐसे किसान के पास उत्तम पशुओं का एक झुन्ड हो सकता है जो गांव के लिए निधि के रूप में है। पास के गांव वाले उसके पशुओं को देखकर प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं तथा अपने पशुओं को सुधारने के लिए उससे पशु ले सकते हैं। इसके साथ साथ वे उसके सांड़ या विभाग द्वारा प्राप्त सांड़ की सेवा भी प्राप्त कर सकते हैं। सारे देश में ऐसे पशुओं का जाल हो जाने पर देश के पशु सुधार में काफी सहायता मिलेगी।

मिश्रित खेती का महत्व

दुग्ध व्यवसाय किसान को खेती के सम्बन्ध में भी प्रगति शील बना देता है। वह यह समझता है कि उसे अपनी सीमित भूमि में से कुछ भूमि चारे की खेती के लिए निकालनी चाहिए। वह इस बात की एक योजना बनाता है कि उसे उसके खेतों से अधिक से अधिक उपज कैसे हो सकती है। वह अच्छी उपज वाले चारों के बीज की खोज करता है और सिंचाई की अधिक सुविधा के उपयोग द्वारा वह अपने परिवार तथा पशुओं को उसी भूमि पर भली प्रकार रखने का प्रयत्न करता है। वह गहन कृषि आरम्भ करता है और फसलों के एक सुनियोजित कार्यक्रम और उर्वरकों के उचित उपयोग द्वारा अपना भाग्य बदलता है, वह अपनी गोबर आदि की खाद का पूर्ण उपयोग करता है। इस प्रकार दुग्ध व्यवसाय भूमि के सुधार में काफी सहायता करता है। अपनी भूमि पर रहते हुए, दुग्ध व्यवसाय को अति-

रिक्त आय के साधन के रूप में करते हुए, ऐसा किसान अपने गांव तथा अपनी भूमि पर रहते हुए अपने परिवार के अन्य सदस्यों को, जिन्हें रोजी नहीं मिलती है, भी काम पर लगा सकता है। उसे शुष्क अवधि में अपने दुधारु पशुओं को बेचने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि उन्हें घर पर ही रखने में उसे बहुत ही कम खर्च पड़ता है। उसके परिवार की मुफ्त मेहनत, उसकी भूमि तथा गांव के सामूहिक चरागाह यह सब पशु की शुष्क अवधि में उसका खर्च कम करने में बहुत सहायता देते हैं। वास्तव में वह मिश्रित कृषि की पद्धति पर चलता है, जिसकी हमारी राष्ट्रीय आयोजनाओं में सिफ़ारिश की गई है।

मंडी की सुविधाएं मूल हैं

अपने इस कार्य में दुग्ध व्यवसाय करने वाले किसान को उसके द्वार पर ही मंडी की आवश्यकता है। उसकी वस्तुओं को वहीं से एकत्रित करना चाहिए ताकि कोई भी बीच का आदमी उसकी आय में भारी हिस्सा न लेने पावे। उसे अपने दूध को उचित रूप से बेचने के लिए उस शहर तक जाने के कष्ट से भी मुक्ति मिलनी चाहिए। वास्तव में उसे तो वहीं रह कर अपने पशुओं की अच्छी खिलाई तथा प्रबन्ध द्वारा उत्पादन बढ़ाने पर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए और किसी अन्य संस्था को उसके माल की बिक्री का प्रबन्ध करना चाहिए। उसे दुधारु पशु तथा अन्य सामान खरीदने के लिए ऋण तथा आर्थिक सहायता के प्रबन्ध के अतिरिक्त हमारी डेरी प्लानिंग का यही लक्ष्य होना चाहिए। सहकारी दुग्ध संकलन समितियां दुग्ध उत्पादकों की बिक्री तथा अन्य यातायात की सुविधाओं का मिल जुल कर लाभ उठाने में सहायता कर सकती हैं। इन समितियों के उत्पादक को इन कार्यों में पूरा हाथ मिलना चाहिए, हालांकि उसके शीघ्र नष्ट हो जाने वाले पदार्थों की देख रेख सम्बन्धी सहायता विशेषज्ञ देंगे।

दुग्ध संकलन योजनाएं प्रदेश के भीतरी भागों में चलनी चाहिए, विशेष कर प्रजनन क्षेत्रों में अवश्य ही चले। ऐसी विस्तृत दुग्ध संकलन योजनाओं के न होने के कारण दुधारु पशु शहरों में या शहरों के पास, जहां दूध की लाभप्रद मंडियां हैं, एकत्रित होने लगते हैं, वहां रहने के स्थान बहुत अस्वास्थ्यप्रद हैं तथा चारे की बड़ी कमी है। इसका फल यह होता है कि हमारे अच्छे से अच्छे दुधारु पशुओं का एक ही ब्यांत में उत्पादन कम होने लगता है। शहरों में पशुओं के अधिक समय तक शुष्क रहने के कारण उन्हें रखना कठिन हो जाता है। चारे की कमी तथा घटिया किस्म के चारे के कारण बच्चे मर जाते हैं और यातायात के भारी खर्च के कारण इनका गांवों में लौटना कठिन हो जाता है। इस हानिकारक धारा को रोकने की आवश्यकता है क्योंकि दुधारु पशुओं की इतनी शीघ्रता से पूर्ति नहीं की जा सकती है। इसका एक ही हल है कि दुग्ध संकलन योजनाएं भारत के अधिक से अधिक ग्रामीण भागों में फैल जावें। इन योजनाओं को शहर के आस पास, जहां से सामान्यतया दूध जाता है, नहीं होना चाहिए। सभी प्रजनन क्षेत्रों की आवश्यकता पूरी करने के लिए बहुत विस्तृत क्षेत्र में दुग्ध संकलन होना चाहिए। यही रास्ता पशुओं को शहरों के गन्दे वातावरण में जाने से रोक सकता है। यह तो स्पष्ट ही है कि इसके लिये संकलन, यातायात और वितरण की विभिन्न अवस्थाओं में दूध को ठंडा करने की सुविधाओं की आवश्यकता है। हमारी राष्ट्रीय आयोजनाओं में अधिक विद्युत शक्ति का प्रविधान होने के कारण इसमें सन्देह नहीं है कि दुग्ध उद्योग उचित ढंग से विकसित होगा।

हमारे जैसे देश में, जहां प्रति व्यक्ति दूध की खपत कठिनाई से ५-६ औंस है, अभी वह समय नहीं आया है कि हम सूखा दूध आदि बनाने के कारखाने स्थापित करें। उन क्षेत्रों में भी जहां दुग्ध उत्पादन

कुछ अच्छा है वहां भी प्रति व्यक्ति दूध की खपत कठिनाई से ८ औंस है जो किसी भी स्वास्थ्य के मापदण्ड से पर्याप्त नहीं कही जा सकती है। किसानों की गिरी हुई आर्थिक दशा इन कारखानों को दूध देने के लिए उस थोड़े से दूध को, जो वह अपने उपयोग हेतु रखता है, बेचने के लिए विवश कर देती है और कृषक के अपने उपयोग हेतु भी इन क्षेत्रों में दूध का दाम अधिक हो जाता है।

यही नहीं व्यापारी अच्छा मूल्य मिलता देख कर, उन क्षेत्रों में, जहां डेरी कारखाने चलते हैं, अधिक संख्या में दुधारु पशु आयात करने के लिए लालायित हो उठते हैं। औद्योगिक क्षेत्र में दुग्ध व्यवसाय के माने यह है कि प्रतिवर्ष दूध न देने वाले पशु निकाल दिये जाते हैं और अन्य क्षेत्रों से नये पशु जो दूध दे रहे हैं, लाए जाते हैं। इससे ऐसे क्षेत्र में न तो गहन रूप से प्रजनन कार्यक्रम ही होता है और न इससे देश में दुग्ध उत्पादन या पशुओं का विकास ही होता है। वास्तव में दुग्ध पदार्थ बनाने के कारखाने देश में दूध की मांग को पूरा करने के बाद बचे हुए दूध का उपयोग करने के लिये बनाये जाते हैं। वह अवस्था अभी भारत वर्ष में नहीं आई है। देश को पहले तो अधिक संख्या में दुधारु पशु पैदा करना चाहिए ताकि बाद में दूध के अधिक उत्पादन के कारण ऐसे कारखाने की स्थापना ठीक प्रतीत हो।

भारत की वर्तमान स्थिति में डेरी योजनाओं को पशु विकास कार्यक्रम के सहायक रखना चाहिए। पशु पालन एक दीर्घ कालीन धन्धा है जो कृषि के अधीन है। कृषक को अपने गांव में अपनी भूमि पर दुग्ध उत्पादक पशुओं को पालने तथा उनका दुग्ध उत्पादन बढ़ाने में सहायता की जानी चाहिए। उसकी भूमि से उसके पशुओं को हटा देना देश हित में नहीं है। उसे तो सिर्फ अपने द्वार पर ही माल की बिक्री की सुविधा चाहिए। डेरी योजनाओं को इस विषय पर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

भारतीय कृषि में

गोवंश का महत्त्व

राधा रमण अग्रवाल

सृष्टि के प्रारम्भ से ही मनुष्य पशुधन पर निर्भर रहा है। सभ्यता के विकास के पहले मनुष्य वनों में रहता था और जंगली पशुओं का शिकार करके अपना उदर-पोषण करता था। यह स्थिति अनेक वर्षों तक रही और पशुधन मानवजाति के जीवनदाता के रूप में रहा।

धीरे धीरे सभ्यता का विकास प्रारम्भ हुआ और मनुष्य ने धरती से अन्न उपजाना सीखा। इस समय तक वह बोझा ढोने के लिये भी पशुओं का उपयोग सीख चुका था और उसने यह जान लिया था कि पशु श्रमशक्ति का सर्वोत्तम स्रोत है और उसके प्रत्येक कार्य में उसका सर्वश्रेष्ठ सहायक है। अतः उसके हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि क्यों न धरती से अन्न उत्पन्न करने के लिये उसका प्रयोग किया जाय? बस मानव मस्तिष्क में इस विचार के प्रादुर्भाव के उस अत्यन्त प्राचीन काल से अब तक भारतीय कृषि पशुधन पर निर्भर रही है और भारतीय स्थितियों में सम्भवतः आगामी अनेक शताब्दियों तक कृषि कार्य में पशुधन का सदुपयोग एवं सहयोग अक्षुण्ण बना रहेगा।

मानव जाति के साथ पशुधन के इस अटूट एवं घनिष्ठ सम्बन्ध की पृष्ठ-भूमि में अब हमें यह देखना है कि भारतीय कृषि में विशेषतया गोवंश का क्या महत्व है। वैसे तो अनेक पशु मनुष्य के लिये विभिन्न कार्यों के सम्पादन में उपयोगी हैं किन्तु भारतीय कृषि तो पूर्णतया गोवंश पर निर्भर करती है। लगभग प्रत्येक कृषि कार्य में बैल किसान का सबसे बड़ा

साथी और सहायक है।

कोई भी फसल पैदा करने के लिये सबसे पहले खेत की जुताई की आवश्यकता होती है। वैसे कहीं कहीं इस कार्य के लिये भैंसों का भी प्रयोग किया जाता है किन्तु यह कार्य मूलरूप में बैलों द्वारा ही सम्पन्न होता है। कड़ी, मुलायम, पथरीली, चिकनी आदि सभी प्रकार की भूमियों की जुताई बैलों द्वारा सुगमतापूर्वक अच्छी तरह की जाती है।

वैसे आधुनिक कृषि पर विदेशी प्रभाव के कारण जुताई के लिये ट्रैक्टरों के प्रयोग की चर्चा अक्सर की जाती है किन्तु भारतीय स्थितियों में इसका प्रयोग कहां तक सफल हो सकता है यह प्रश्न विचारणीय है। सबसे पहली बात तो यह है कि भारतीय किसान की आर्थिक स्थिति इतनी कमजोर है कि ट्रैक्टर खरीदने के लिये धन जुटाना ही उसके लिये असम्भव है। कुछ बड़े और सम्पन्न किसान भी, जो ट्रैक्टर द्वारा खेती में दिलचस्पी रखते हैं और खरीद भी सकते हैं, अन्ततः बैलों की ही शरण में आते हैं क्योंकि ट्रैक्टर की टूट फूट और मरम्मत आदि के काम में कठिनाई अनुभव होती है। भारत के साधारण किसान की जोत इतनी छोटी है और वह भी छोटे छोटे टुकड़ों में इस प्रकार विभक्त है कि उसमें ट्रैक्टर का प्रयोग करना असम्भव सा ही है। इसके अतिरिक्त भारत की कृषि योग्य भूमि का बहुत बड़ा भाग ऐसा है कि जिसमें गहरी जुताई लाभदायक नहीं सिद्ध होती। इन सब बातों के अतिरिक्त अनुभव द्वारा यह भी देखने में आया है कि ट्रैक्टर की जुताई से भूमि के कटाव को प्रोत्साहन मिलता है और यह समस्या इतना भीषण रूप धारण कर लेती है कि स्थिति को सम्भालना मुश्किल हो जाता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारतीय कृषि में जुताई का महत्वपूर्ण कार्य बैलों पर ही निर्भर रहा है और भविष्य में भी बैलों की सहायता इस कार्य के लिये अपेक्षित रहेगी।

अच्छी पैदावार के लिये सिंचाई का स्थान महत्वपूर्ण है। बिना सिंचाई की खेती का विशेष महत्व नहीं होता है। इस महत्वपूर्ण कार्य में भी बैल किसान के सबसे बड़े सहायक हैं। सिंचाई का अधिकतर कार्य बैलों द्वारा ही सम्पन्न होता है। सिंचाई के कुए से, पुर से चरस अथवा रहट द्वारा पानी खींचने का कार्य बैलों द्वारा ही लिया जाता है। यद्यपि नहरों, नलकूपों आदि के विस्तार के साथ साथ सिंचाई कार्य पद्धति में परिवर्तन हो रहा है किंतु अधिकतर किसान नहरों तथा नलकूपों की कार्यक्षमता और सामयिक उपयोगिता पर भरोसा नहीं रखते और इस कार्य में बैल ही अब भी उनका सहारा है। यह इसलिए है कि फसल की आवश्यकता के समय अक्सर नहरों से पानी नहीं मिल पाता और प्रायः ऐसा होता है कि सिंचाई के समय नलकूपों में कोई खराबी हो ही जाती है। इसीलिये किसान सिंचाई समय पर और आवश्यक मात्रा में करने के लिये बैल पर निर्भर हैं।

फसल तैयार होने पर उसे काट कर खलिहान तक लाने में भी प्रायः बैलगाड़ी का उपयोग होता है और इस रूप में बैल सर्वश्रेष्ठ और सुगम भार वाहक सिद्ध होता है। फसल के खलिहान में आ जाने पर उसकी मड़ाई दंवाई का कार्य गोपुत्रों द्वारा ही लिया जाता है। यद्यपि अब मशीनों द्वारा मड़ाई पर विशेष जोर दिया जाने लगा है किन्तु इस दिशा में प्रगति बहुत धीमी है और इस कार्य के लिये अब भी किसान अपने जनम जनम के साथी को छोड़ कर जड़ मशीनों के प्रयोग की ओर आकर्षित नहीं हो पाया है।

उपरोक्त तथ्यों से यह नितान्त स्पष्ट है कि कृषि के तीन महत्वपूर्ण कार्य जुताई, सिंचाई और मड़ाई गोवंश के सहारे ही सम्पन्न किये जाते हैं और इस रूप में भारतीय कृषि में गो वंश का महत्व अत्यन्त गौरवपूर्ण है।

अब भारतीय खेती में पशुधन अथवा गोवंश के सर्वाधिक महत्वपूर्ण

सहयोग की बात आती है—वह है खाद। खाद खेती की जान है और उसके बिना खेती निर्जीव ही समझिये। कृषि में खाद के स्रोत के रूप में पशुधन का महत्व अत्यन्त बहुमूल्य है।

एक पशु से वर्ष भर में लगभग ३ टन खाद मिलती है और अनुमानतः उत्तर प्रदेश में पशुओं के मल-मूत्र से १३२ करोड़ मन से अधिक खाद तैयार की जा सकती है। इस खाद के पूर्ण सदुपयोग से लगभग ८ करोड़ मन अधिक अन्न पैदा हो सकता है जिसका मूल्य करोड़ों में आता है। वैज्ञानिकों के कथनानुसार एक टन सूखे गोबर में १५५ पौण्ड अमोनियम सल्फेट होता है और ८ हजार पौण्ड गो-मूत्र में उतना ही नत्रजन है जितना १८ हजार पौण्ड गोबर में।

इस प्रकार पशुओं के गोबर और उनके मूत्र में विभिन्न फसलों के लिये पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। कमी इस बात की है कि हम अभी तक गोबर के महत्व को अच्छी तरह समझ नहीं पाये हैं और अज्ञानवश अथवा ईंधन के लिये लकड़ी के अभाव के कारण यह अमूल्य पदार्थ जो कि अन्न से हमारा भण्डार भर देने की क्षमता रखता है, ईंधन के रूप में चूल्हे में झोंक दिया जाता है।

गोबर अथवा कम्पोस्ट की प्राकृतिक खादें धरती की उर्वरा शक्ति बढ़ाने में तो अद्वितीय हैं ही लेकिन उनके साथ एक महत्वपूर्ण बात और है जो कि उनकी विशेषता को कई गुना बढ़ा देती है।

सर सबर्ट हावर्ड ने अपनी 'एग्रीकल्चरल टेस्टामेण्ट' शीर्षक पुस्तक में भारतीय कृषि के अनुभवों का विवरण प्रस्तुत करते हुए लिखा है—'फसलों के रोग तथा रोग के कीड़ों की उत्पत्ति आदि वास्तविक नहीं वरन् ये तो अस्वस्थ भूमि के परिणाम-मात्र हैं। भूमि स्वस्थ होने पर कीड़े मकोड़े आदि आक्रमण नहीं करते और फसलें खराब नहीं जातीं।

भूमि अस्वस्थ और रोगी तभी होती है जबकि उसको प्राकृतिक खाद नहीं प्राप्त होती। गोबर और हरी खाद ही भूमि का वास्तविक खाद्य पदार्थ है। यह भूमि को स्वस्थ रखती है और उसकी उर्वराशक्ति को बनाये रखती है।

यद्यपि आधुनिक कृषि में रासायनिक खादों द्वारा खाद की कमी की पूर्ति के प्रयत्न किये जा रहे हैं किन्तु यह तो स्वयं सिद्ध है कि ये रासायनिक खादें मूल प्रांगारिक खादों का स्थान नहीं ले सकतीं और केवल उनके पूरक के रूप में ही प्रयोग की जा सकती हैं अतः यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता है कि प्रांगारिक खाद कृषि की पैदावार बढ़ाने का अमूल्य साधन है और पशु धन प्रांगारिक खाद का। इस प्रकार और सब बातों को छोड़ भी दिया जाय तो केवल खाद के कारण ही अच्छी कृषि के लिये पशुधन अथवा गो-धन का महत्व चिरकाल तक बना रहेगा। यह तो हुई कृषि में पशुओं के महत्व की बात किन्तु इसके साथ ही यह भी ध्यान देने की बात है कि हमारे सभी पालतू पशु अपने चारे दाने के लिये कृषि पर ही निर्भर करते हैं। दूसरे शब्दों में इसी बात को यों भी कहा जा सकता है कि भारत में कृषि और पशु पालन दोनों का अभिन्न सम्बन्ध है और उनके स्वतन्त्र स्थान की कल्पना ही नहीं की जा सकती है।

विदेशों में जहां कि यांत्रिक खेती का प्रचलन है- कृषि और पशुपालन दो स्वतन्त्र धन्धों के रूप में प्रचलित हैं किन्तु भारत में तो कृषि और पशुपालन की मिश्रित प्रणाली ही श्रेयस्कर है। इसमें किसान का लाभ भी होता है। एक ओर जहां उसे पशुओं की मदद से अन्न प्राप्त होता है, उसी के साथ ही पशुओं के भरण पोषण के लिये चारा, भूसा आदि भी उत्पन्न होता है। इस प्रकार उसकी अपनी और उसके पशुओं के भरण-पोषण की समस्या एक साथ ही हल हो जाती है। अन्न

के अतिरिक्त उसे घी, दूध, दही आदि पौष्टिक पदार्थ भी प्राप्त हो जाते हैं जो कि उत्तम स्वास्थ्य के लिये नितान्त आवश्यक हैं।

भारतीय कृषि में अन्य पशुओं की अपेक्षा गो और गोवंश का महत्त्व इसीलिये अधिक बढ़ जाता है कि अन्य दुधारु पशुओं की तुलना में गाय से मलमूत्र के रूप में उत्तम खाद तथा दूध, घी के रूप में अमूल्य पोषक पदार्थ के अतिरिक्त कृषि कार्य का मूल आधार बैल भी प्राप्त होता है जो कि किसान का सच्चा साथी है और अभिन्न सहायक है। अनेक अन्य कारणों के साथ भारतीय संस्कृति में गोपालन के महत्त्व का यह भी एक विशेष कारण है और इसी लिये युग युग से गाय इस राष्ट्र के जीवन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं वन्दनीय रही है।

राष्ट्र पिता महात्मा गांधी के शब्दों में :—

'भारत में गाय ही मनुष्य की सबसे निकटतम साथी है। वह धन-धान्य की प्रदात्री है और उससे हमें न केवल दूध मिलता है वरन् कृषि भी उसी की सहायता से संभव होता है। गो मूर्तिमयी करुणा है और गो-संरक्षण सम्पूर्ण जगत के लिये हिन्दुत्व की बहुत बड़ी देन है।'

—०—

गोपाष्टमी क्यों और कैसे ?

गौरी दत्त लोहनी

पशु पालन तथा कृषि के आविष्कार द्वारा ही मनुष्य ने अन्य पशुओं की अपेक्षा अपनी बुद्धि की श्रेष्ठता का सर्व प्रथम परिचय दिया। हवा और पानी के बाद भोजन ही मनुष्य की सबसे बड़ी आवश्यकता है। इनमें प्रथम दो के लिए हमें विशेष प्रयास नहीं करना पड़ता है। अतः भोजन ही मनुष्य की वह मूलभूत आवश्यकता है जिसकी प्रचुरता और अभाव के बीच संतुलन बनाये रखना मानव समाज की सबसे बड़ी समस्या है। इतिहास साक्षी है कि दुनिया की उथल पुथल और जातियों के उत्थान और पतन का यही कारण रहा है।

भोजन की इस मूलभूत समस्या को सुलझाने की विभिन्न देशों और जातियों की अपनी अपनी प्रणालियां रहीं। कहीं वन्ययुग का मांस-भक्षण जारी रहा तो कहीं दुग्धाहार और शाकाहार तक की प्रगति हुई। अहिंसा के महान् प्रवर्तक बुद्ध और महावीर की इस जन्म भूमि में जब अधिकांश जनता ने मांस भक्षण छोड़ दिया तो हमारे कृषि प्रधान देश में गाय का महत्व दुगुना बढ़ गया। एक ओर पूर्ण आहार होने के कारण गाय का दूध मनुष्य के पोषण का सर्वोत्तम साधन है तो दूसरी ओर इसका बछड़ा बैल बनकर हमारे कृषि कार्य की धुरी धारण किये हैं। वास्तव में हम गाय के बिना जीवित रह पाने की कल्पना भी नहीं कर सकते। यही कारण है कि जन्मदायिनी जननी की ही भांति हमारे पोषण में सहायता प्रदान करने वाली गाय को भी हमने मां के रूप में जाना और माना है। हमारी अहिंसात्मक वृत्ति की रक्षा के लिए

गोपालन ही हमारा सबसे बड़ा अहिंसात्मक साधन रहा है।

दूध मनुष्य के पोषण के लिए एक अन्यतम वस्तु है। अन्तरिक्ष की गवेषणा में सफलता प्राप्त कर लेने पर भी विज्ञान ने दूध के तुल्य कोई अन्य वस्तु अभी तक बनाकर नहीं दी है। अमेरिका तथा यूरोप के समान देशों में मांस मदिरा के साथ साथ दूध और तत्जन्य पदार्थों का प्रचुरता से उपयोग होता है। कहीं कहीं तो दूध की खपत प्रतिदिन प्रति व्यक्ति पौने दो सेर तक आंकी गई है। चीन, जापान सरीखे कुछ देश ऐसे भी हैं जहां दूध का एक बूँद भी प्राप्त नहीं। वहां के लोग चाय भी बिना दूध के ही पीते हैं। उनके जीवन रस प्राप्त करने का एक मात्र साधन है मांस मछली। मांस भक्षण चरम सीमा तक पहुंच चुका है। गाय, घोड़े, भेंड़, बकरी, सुअर के साथ साथ छोटे छोटे कीड़े मकोड़ों से लेकर छिपकली, मेढ़क, सांप, चूहे, कुत्ते, बिल्ली सभी को चाव के साथ जठराग्नि में झोंक दिया जाता है।

यह सब उपलब्धियां भूमि की प्राप्ति पर निर्भर हैं। पर्याप्त भूमि होने पर हम उसमें उगी हुई वनस्पति द्वारा पशुओं का पालन पोषण करके उनसे उत्तम मांस और पर्याप्त दूध अपने उपयोग के लिए प्राप्त कर सकते हैं। आज आस्ट्रेलिया, कनाडा आदि समृद्ध देशों की यही स्थिति है। वहां आवश्यकता से अधिक भूमि उपलब्ध है। चीन जापान में दूध आदि उत्तम आहार के अभाव का कारण है भूमि की नितान्त कमी। हमारा देश इन दोनों का मध्यवर्ती है। देश की बढ़ती हुई आबादी और सीमित भूमि से प्राप्त होने वाली वनस्पति द्वारा अपनी अपनी प्राण रक्षा करने के निमित्त मनुष्य और इतर जीवधारियों में प्रतिस्पर्द्धा लगी है। कहा नहीं जा सकता परिस्थितियां हमें कहां ले जायेंगी। यह सत्य है कि सीमित भूमि से यदि अधिक मनुष्यों का पेट भरता है तो वह मोटे अनाज द्वारा ही सम्भव हो सकता

है। उतनी ही भूमि में चारा उगा कर पशुओं को पाला जाय तो उनके दूध तथा मांस से अपेक्षाकृत बहुत कम मनुष्यों की तृप्ति हो सकती है। पशुओं के चरागाहों का क्रमशः अनाज की खेती के अन्तर्गत आते जाने का यही कारण है। किन्तु कृषि कार्य के लिए बैलों की अनिवार्यता तथा दूध आदि पशु जन्य पदार्थों की परम आवश्यकता को दृष्टि में रखते हुए हम पशुओं की विशेषतः गाय को किसी भी हालत में अपनी कृषि व्यवस्था से अलग नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त हम जैसे शाकाहारियों के एक मात्र रक्षक आहार अमृत तुल्य गोदुग्ध की प्रशंसा में जो कुछ कहा जाय कम ही है।

सर्वोपनिषदो गावो
दोग्धा गोपाल नन्दनः
पर्गोवत्सः सुधीर्मोक्ता
दुग्धं गीतामृतंमहत्।

यहां गीता का माहात्म्य वर्णन में प्रकारान्तर से गोदुग्ध के महत्व पर भी प्रकाश डाला गया है। हमारे अंतःकरण की पुष्टि के लिए जो स्थान श्रीमद्भगवतगीता का है वही स्थान हमारे इस स्थूल शरीर के भरण पोषण के निमित्त दुग्धामृत का है। गीता के प्रवक्ता युग पुरुष श्रीकृष्ण के ही कर कमलों द्वारा गोधन के महत्व का उद्घाटन हुआ था। उन्होंने ही गोपालनन्दन बन कर गोपालन के महत्व का प्रतिष्ठान किया। गोवर्धन–गोपाष्टमी पर्व उन्हीं के अलौकिक चरित्रों से जुड़े हैं। मानव जाति और गोवंश के अहिंसात्मक सह अस्तित्व की स्वीकृति तथा तदर्थ सक्रिय प्रयत्नों के प्रति सतत् जागरुकता ही गोपाष्टमी का वर्षावर्तक संदेश है।

यदि हमें अपने पूर्व पुरुषों द्वारा प्रवर्तित तथा राष्ट्रपिता द्वारा नवीकृत अहिंसा मार्ग का अनुसरण करते हुए अपनी संस्कृति और अपने अस्तित्व की रक्षा करनी है तो हमें गोपाष्टमी पर्व मनाना ही होगा और प्रतिवर्ष अधिकाधिक दृढ़ता और उत्साह के साथ उनके संदेश का मनन और अनुशी-

लन करना होगा। सनातन धर्मावलम्बिओं के लिए गो की रक्षा करना पावन कर्तव्य है।

गोपाष्टमी गाय के प्रति श्रद्धा भक्ति के ज्ञापन और गोपूजा का परम्परागत पर्व है। इसे मनाने का विधि विधान धार्मिक पुस्तकों में सुरक्षित है। गो की षोडशोपचार पूजा, अलंकार, शोभा यात्रा, माहात्म्य वर्णन प्रागैतिहासिक काल से चले आ रहे हैं। वेद पुराणों में इसका वर्णन भरा पड़ा है। रामायण काल से पूर्व सम्राट दिलीप द्वारा "नन्दिनी" की समाराधना कालिदास के अमर काव्य रघुवंश का समुज्ज्वल अंश माना जाता है।

प्राचीन काल में जिस युग की पृष्ठभूमि पर हमारे धार्मिक अनुष्ठानों का प्रणयन हुआ था, प्रकृति की हरी भरी गोद में गिने चुने मानव और गोवंश पारस्परिक रक्षण पोषण द्वारा निर्द्वन्द्व विचरण करते थे। गाय को भय था केवल वन्य हिंसक पशुओं से और उनसे उसकी रक्षा का भार था मानव पर जिसका वह प्राणपण से निर्वाह करता था। इसके बदले में उसे मिलने वाला पंचगव्य मानव की सर्वोत्तम विभूति थी। उसके दैनिक व्यवहार की सामग्री में इन्हीं का बाहुल्य था। यही उसका मुख्य आहार था और यही उसकी औषधि और इसी से वह अपने सारे कुटुम्ब को ही नहीं अपने देवता और पितरों को भी तृप्त करता था। गोपालन का महत्व यहां तक बढ़ा कि महाभारत काल में युग पुरुष श्री कृष्ण ने स्वयं गोचारण मर्यादा को सुप्रतिष्ठित किया और गोपाष्टमी के वार्षिक उत्सव द्वारा इस प्रथा को सनातन धर्म दिया। कालान्तर में जनसंख्या की क्रमशः आशातीत वृद्धि हो जाने के कारण प्राकृतिक साधनों का अधिकाधिक उपयोग कृषि कार्य के लिए होने लगा और मनुष्य धीरे धीरे गाय के बच्चे की सहायता से उसके ही मुंह का ग्रास छीनने लगा। बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए अधिक मात्रा में दूध की तथा अधिक भूमि

में कृषि कार्य के लिए बैलों की पूर्ति के निमित्त गाय की आवश्यकता तो दिन प्रति दिन बढ़ती गई किन्तु उसके आहार का प्राकृतिक साधन गोचर भूमि कम होती गई। परिणाम-स्वरूप आज ऐसी स्थिति आ चुकी है कि हमारे पास गाय के यथोचित पोषण का कोई साधन नहीं रहा और हम यह कामना करने लगे हैं कि गाय बिना कुछ खाए ही हमें दूध पूत प्रदान करके हमारी आवश्यकता की पूर्ति करती रहे।

स्वभावतः इस समय वैज्ञानिकों के सामने यह चुनौती है कि विज्ञान की सहायता से हमारे देश के लिए उपयुक्त गाय की ऐसी नस्ल तैयार की जाय जो स्वल्पाहारी हो किन्तु दूध प्रचुर मात्रा में दे। आज कतिपय समृद्ध देशों में मन मन भर दूध प्रतिदिन देनेवाली गायें विद्यमान हैं किन्तु तदनुरूप उनके आहार विहार के साधन भी वहां उपलब्ध हैं। अतः पर्याप्त आहार द्वारा गाय से प्रचुर दूध प्राप्त करना यह स्वाभाविक बात है और गोवंश की विशुद्धता द्वारा हमारे देश में भी इसकी सम्भावना का पता कई स्थानों पर मिल चुका है। किन्तु इससे हमारी समस्या का पूर्ण समाधान नहीं होता। हमें तो कुछ ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए जिससे हम गाय को कम खिलाकर ज्यादा दूध पा सकें और अपने सीमित साधनों द्वारा अपनी आश्यकता की पूर्ति कर लें। युगों से चली आती हमारी गोपालन की परम्परा आज अवरुद्ध हो गई है। हमें आधुनिक विज्ञान की उपलब्धियों का सहारा लेना होगा।

अतः परम्परागत विधि द्वारा गाय की आराधना के साथ साथ हमें ऐसी साधना भी करनी है जिससे हम अपनी गाय का वैज्ञानिक संवर्धन पोषण तथा संरक्षण करके उसे अपनी बदली हुई आर्थिक परिस्थिति के उपयुक्त बना सकें। इसके लिए कौन सी वैज्ञानिक पद्धति हमें अपनानी है और किस तरह? हमारे

(शेष पृष्ठ २९ पर)

साइलेज

डी० एन० सूद

हरे चारे के संरक्षण की एक विधि :—

ग्रीष्म व शीत ऋतु में हरे चारे का अभाव किस किसान को नहीं होता। इस अभाव काल में खरीफ की फसलें ज्वार, मक्का या रबी में मटर इत्यादि को करबी या घास के रूप में रखने की प्रथा कौन किसान नहीं अपनाता ?

परन्तु क्या इस सूखे चारे में पशु के लिये आवश्यक पौष्टिक तत्व बचते हैं ? कदापि नहीं। तो फिर क्यों न हरे चारे को इस ढंग से रखें कि आवश्यकता के समय वह बिना कठिन परिश्रम एवं अधिक खर्च के मिल जावे। इसका एक उपाय साइलेज बनाना है।

साइलेज क्या है ?

वैसे तो हरा चारा काट कर डाल देने से कुछ ही काल में सूख कर नष्ट हो जाता है, किन्तु यदि यही चारा किसी गड्ढे में दबा कर रखा जाए तो उसके अन्दर पैदा हुई गर्मी व सीमित वायु में रहने वाले सूक्ष्म कीटाणु जो सर्वत्र होते हैं, द्वारा चारे के पौष्टिक तत्व जैसे प्रोटीन, शक्कर आदि, जो साधारणतया पशु शरीर में कुछ प्रतिशत ही पच पाते हैं, शीघ्र पचने वाले स्तर में बदल जाते हैं जिससे हरे चारे के सब गुण ज्यों के त्यों बने रहें। परन्तु इसके लिये आवश्यक है कि चारे में पर्याप्त मात्रा में शक्कर हो व गड्ढे में अधिक हवा न हो।

साइलेज बनाने के लिये फसल :

वैसे तो प्रायः हरी घास का साइलेज बन सकता है किन्तु मक्का, ज्वार, बाजरा आदि, जिनमें पर्याप्त शक्कर होती है, का साइलेज बहुत अच्छा

होता है। अधिक प्रोटीन वाली फसलें जैसे मटर आदि का भी साइलेज अच्छा हो सकता है, यदि उनको गड्ढे में डालने के साथ उन पर शीरे के घोल का छिड़काव भी कर दिया जाये।

फसल कैसी हो ?

फसल बाल आने से पहले ही काट लेना चाहिए नहीं तो डंठल सख्त होने के साथ-साथ पौष्टिक तत्व भी बीज में केन्द्रित हो जावेंगे। परन्तु ध्यान रहे कि वर्षा में काटी गयी फसल में अधिक नमी के कारण चारे के सड़ जाने का डर रहेगा। इसलिये अगर वर्षा का मौसम हो तो फसल को गड्ढे में डालने से पहले १०-१२ घंटे तक और यदि सूखा मौसम हो तो ३-४ घन्टे तक फसल सुखा लेना आवश्यक है। चारा कुट्टी के रूप में अथवा साबुत भरा जा सकता है।

साइलेज बनाने की विधि

किसी ऊंची भूमि पर, जो रेतीली न हो, प्रायः १२×२०×८ फीट के आकार का गड्ढा खोदने के बाद भूमि की सतह तथा दीवारों पर सूखी बेकार घास या कांस आदि की एक तह बिछा देनी चाहिये। गड्ढे का आकार चारे की मात्रानुसार छोटा या बड़ा किया जा सकता है। गड्ढे में प्रति दिन २-३ फीट चारे की तह पर तह बिछा कर हर तह को पांव से खूब कुचल देना चाहिये ताकि जहां तक हो सके उसमें कम वायु रह पावे। ऊपर लिखे अनुसार अगर शीरे की आवश्यकता हो तो प्रति २७-३० मन चारे पर १० सेर शीरे का घोल ४-५ गुने पानी में मिलाकर बीच बीच में छिड़कने से विशेष प्रकार का मीठा एवं सुगन्धित साइलेज बन सकता है।

गड्ढे के पूरा हो जाने पर भूमि की सतह से ४-५ फीट ऊपर तक ढेर लगा देना चाहिये ताकि कुछ दिनों में चारे के बैठ जाने पर खाली जगह भर जावे और अन्त में यह ढेर भूमि से केवल १ या २ फुट ऊंचा रह जाए। गड्ढे के भर जाने पर

उसके ऊपर कांस आदि बिछा कर मिट्टी से खूब दबा देना चाहिये ताकि हवा या पानी उसके अन्दर न जा सके। ऊपर की मिट्टी में दरार पड़ने पर उसको फिर से दबा देना चाहिये। इस तरह साइलेज के रूप में अच्छा चारा ६-७ सप्ताह में तैयार हो सकता है जिसे आवश्यकता के अनुसार गड्ढे को खोलने पर खिलाया जा सकता है। इसमें हरे चारे के सब गुण होते हैं। परंतु ध्यान रहे कि खराब चारा डालने से अच्छा साइलेज न बनेगा। साइलेज में केवल हरे चारे के गुण लगभग वैसे ही बने रहने की सम्भावना है।

गड्ढा खोदने की विधि

गड्ढा केवल एक तरफ से २-३ फुट चौड़ा खोदना चाहिये और जब तक नीचे की एक तह खतम न हो जाए ऊपर की मिट्टी नहीं हटानी चाहिये। गड्ढे को एक दफा खोलने पर उसे शीघ्र से शीघ्र खाली कर देना चाहिये नहीं तो उसमें फफूंदी लग जाने का डर रहेगा।

एक घनफुट में लगभग १२ सेर साइलेज बन सकता है। ऊपर दिये आकार के गड्ढे में २५० से ३०० मन साइलेज, जो कि १५ से २० पशुओं के लिये एक से डेढ़ माह तक काफी होगा, बन सकता है।

साइलेज की पहचान--

अच्छे साइलेज की पहचान यह है कि वह गहरे हरे रंग का होता है और इसमें शराब की सी सुगन्ध आती है जिसे पशु रुचि से खाते हैं। परन्तु हर पशु जिसको इसे खाने की आदत नहीं है, प्रारम्भ में उसको नहीं खाता, इसलिये शुरू में इसको कम मात्रा में अन्य चारे में मिला कर देना चाहिए। एक बड़ी गाय को इस तरह मिला कर ७-८ सेर प्रति दिन खिलाया जा सकता है।

कठिनाई तथा लाभ :--

कठिनाई केवल एक ही है कि गांव में प्रायः प्रति व्यक्ति कम भूमि होने से इतना अधिक चारा साधारणतया नहीं होता है जो कि इस

तरह बचा कर रखा जा सके। मगर उन उन भागों में जहां किसान सिर्फ दूध पैदा करते हैं या दूध पैदा करना शुरू करेंगे तो सम्भव है कि वह बहुत सी जमीन चारे को पैदा करने में लगायेंगे। ऐसी हालत में चारे को सुरक्षित रखने की यह विधि अपनाई जा सकती है। परन्तु वर्षा में उगी अनेक प्रकार की घासें जो वर्षा की समाप्ति के साथ नष्ट हो जाती हैं, इस विधि से रखी जा सकती हैं। वैसे इससे लाभ निम्न-लिखित हैं:—

(१) हरा चारा बे मौसम में भी मिल जाता है।

(२) फसल को बाल आने से पहले काट लेने के कारण उसके पौष्टिक तत्व डंठल ही में बने रहते हैं जो कि उस समय नरम होता है। इससे उसको खिलाने से दुधारू पशुओं के दूध में वृद्धि होती है तथा दाने में कमी की जा सकती है।

(३) प्रति एकड़ फसल भी घनी बोई जा सकती है और शीघ्र काट लेने से वही भूमि किसी अन्य फसल के प्रयोग में लाई जा सकती है।

(४) कड़े डण्ठल की फसल भी किसी हद तक नर्म होकर अच्छी तरह खिलाई जा सकती है जो हजम भी हो जाती है।

(५) सूखी घास या करबी के मुकाबिले में कम स्थान में उतनी ही फसल रखी जा सकती है जिससे स्थान की बचत हो सकती है।

इसलिये अच्छा साइलेज बनाने के लिये आवश्यक है कि:—

(१) फसल ठीक समय पर काटी जावे। अधिक नमी वाली फसल को कुछ सुखा लिया जावे।

(२) गड्ढा बनाने का स्थान ठीक जगह पर हो।

(३) चारा भरने के साथ साथ उसे खूब दबाना चाहिए।

नीचे के चारे को सड़ने से बचाने के लिये आवश्यक है कि गड्ढे में

बेकार घास आदि की तह बिछाई जावे।

(४) गड्ढा भर जाने के बाद अच्छी तरह बन्द कर देना चाहिये।

(५) चारा भरते समय उसमें अगर आवश्यक हो तो शीरे का घोल पर्याप्त मात्रा में डालना चाहिये। परन्तु ध्यान रहे कि अधिक गीली फसल में अधिक घोल डाल देने से साइलेज खराब बन सकता है।

—:०:—

(पृष्ठ २४ का शेष)

आलोच्य प्रश्न का पर्यवसान इसमें होता है, इसका समाधान हमारे वैज्ञानिकों, क्षेत्र कर्मचारियों तथा गोपालकों को मिलकर करना है और यही प्रश्न गोपाष्टमी पर्व के अवसर पर हम सबके चिन्तन, मनन और कार्यान्वयन का एक मात्र विषय है। इसी के सफल समाधान के लिए प्रतिवर्ष परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप अपनी गोपालन-प्रणाली का परिमार्जन करते हुए हमें इस पुनीत पर्व के चिर सातत्व द्वारा सिद्ध करना है—अहिंसा के प्रतीक गाय और मानव का सह अस्तित्व।

'परस्परं भावमन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ'

—०—

गोपालन

हृदय राम अरोरा

गोपाष्टमी के पर्व को भले ही कोई धार्मिक दृष्टिकोण से देखे परन्तु यह निश्चित है कि उसका आरम्भ प्राचीन काल में गांव के आर्थिक महत्व को ध्यान में रखकर ही हुआ होगा। गोवंश की वर्तमान दशा सुधारने, जन स्वास्थ्य की रक्षा करने तथा अधिक अन्न उत्पादन के लिये यह अति आवश्यक समझा गया कि जनता को फिर से वास्तविक गो सेवा का अर्थ समझाया जावे। इस विचार को जनता के हृदय में वास्तविक रूप से स्थाई करने के लिये सन् १९५३ से राज्य सरकार ने गोपाष्टमी का सप्ताह मनाना शुरू किया। उन्नतिशील राष्ट्र के लिये गाय की केवल धार्मिक पूजा कोई अर्थ नहीं रखती वरन् उसकी वास्तविक सेवा यह है कि जिसके द्वारा उसके शक्तिशाली बछड़े हों, उसमें दूध देने की क्षमता बढ़े और राष्ट्र को अधिक मात्रा में दूध और दुग्ध पदार्थ प्राप्त हों।

इस पर्व को राष्ट्रीय स्थान देने का मुख्य उद्देश्य यही है कि जनता गोपालन के उचित ढंग को समझे तथा प्रजनन, आहार और व्यवस्था सम्बन्धी वैज्ञानिक नियमों का पालन कर गाय की उत्पादन क्षमता बढ़ावे। किसी राष्ट्र की स्वास्थ्य सम्बन्धी सभी समस्यायें गाय की उत्पादन क्षमता पर निर्भर हैं, विशेष कर अपना देश, जिसमें अधिकतर लोग दूध और दूध के बने पदार्थों पर ही पौष्टिकता के लिये निर्भर हैं।

प्राचीन भारत में गोपालन को प्रमुखता दी जाती थी और गऊ को सांस्कृतिक एवं सामाजिक जीवन में

अत्यधिक महत्व दिया जाता था। आर्थिक दृष्टिकोण से गऊ हमारे देश में महत्व पूर्ण स्थान रखती है परन्तु यह सब होते हुए भी हमारी गऊ की क्षमता का स्तर गिरता ही गया। इसका कारण है, हमारे सामाजिक जीवन में अधंकार आना, जो कि हमारी दासता का फल था। अब हम जागरूक हैं और हमें यह भली प्रकार समझ लेना चाहिये कि देश की आर्थिक स्थिति को संभालने की कई अन्य योजनाओं के साथ गऊ पालन भी एक आवश्यक योजना है, जो वैज्ञानिक आधारों पर अवलम्बित है। इस समस्या को हल करने में भले ही काफी समय लगे परन्तु जितना शीघ्र हम अपने देश की गऊ की दूध देने की क्षमता बढ़ावेंगे उतने ही शीघ्र हमारे किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार आयेगा।

भर पेट आहार की समस्या

यह बात कुछ न्याय संगत प्रतीत नहीं होती कि जिस देश में गाय को माता से सम्बोधित किया जाता है उस देश की गाय भूखी और निर्बल रहे। हमें उन सभी साधनों का भरसक प्रयत्न करना होगा जिनके द्वारा गाय का वास्तविक स्तर बढ़े। इस कार्य की सफलता के हेतु हमें अपने संकुचित विचारों का त्याग करना होगा।

सबसे बड़ी समस्या गाय के भर पेट आहार की है। नस्ल सुधार की सभी योजनायें बिल्कुल व्यर्थ होंगी यदि पेट भर आहार की व्यवस्था न हुई। बढ़ती हुई जन संख्या के लिए जहां अधिक अन्न उत्पादन की आवश्यकता है वहीं उनकी पौष्टिकता के लिए अधिक दूध और दूध के पदार्थों की भी आवश्यकता है। अतएव अन्न वाली भूमि में उन सभी साधनों को काम में लाना चाहिए जिनसे प्रति एकड़ उपज बढ़े और गऊ के आहार के लिए थोड़ी भूमि चारे के लिए रखी जावे। बिना हरे चारे के दुधारु गाय का पालन असम्भव है। रबी की फसल में बरसीम, रजका, जई, लोबिया, मटर तथा चने का चारा और खरीफ

की फसल में मक्का, चरी, ग्वार इत्यादि चारे के ही आशय से बोने चाहिए। फलीदार चारे दुधारु गाय के लिए बहुत ही लाभदायक होते हैं। इससे दूध की मात्रा बढ़ती है। कुछ लोग गाय को उसकी दूध की अवस्था में तो खिलाते हैं परन्तु दूध समाप्त होने पर उसकी देख-भाल छोड़ देते हैं। गाय की गाभिन अवस्था बड़ी महत्वपूर्ण है और इस अवस्था में दिये गये आहारों का प्रत्यक्ष प्रभाव गाय के बछड़े और दूध की मात्रा दोनों पर ही होता है। गाय की गाभिन अवस्था में भरपेट हरा चारा तथा दाना देने की उतनी ही आवश्यकता है जितनी दूध वाली अवस्था में। इस प्रकार की व्यवस्था करने पर ही उन्नतिशील प्रजनन की प्रणाली से लाभ होगा। अधिक दूध की क्षमता के गुणों वाले सांड़ से उत्पन्न संतति में प्रत्यक्ष लाभ तभी स्पष्ट होगा जब गाय के आहार में सुधार होगा।

अनुपयोगी गायों की समस्या

देश में गायों की कमी नहीं है परन्तु कमी है अधिक उत्पादन वाली गायों की। अनुपयोगी गायों की छंटनी होनी आवश्यक है और ऐसा करने में निःसंदेह हमें अपने संकुचित विचारों को तिलांजलि देनी होगी। राष्ट्र के हित की भावना के सामने संकुचित धार्मिक भावना का त्याग करना होगा और अनुपयोगी गायों को गोसदनों में रखना होगा। जैसे जैसे अनुपयोगी गायों की संख्या घटेगी वैसे वैसे उपयोगी और अधिक उत्पादन वाली गायों की संख्या बढ़ेगी और राष्ट्र को अधिक मात्रा में दूध मिलेगा। हमारी भावना ऐसी होनी चाहिए कि प्रत्येक किसान परिवार में एक स्वस्थ दुधारु गाय हो जिसे हम भर पेट खिला सकें न कि अधिक संख्या में अनुपयोगी गायें। गऊ की वास्तविक पूजा उसे भर पेट दाना और चारा खिलाना है जिससे उसकी स्वस्थ संतान उत्पन्न हो और उसके उत्पादन में वृद्धि हो और तभी किसानों की आर्थिक स्थिति में बल आयेगा।

गोशालाओं की व्यवस्था

द्वितीय पंच वर्षीय योजना के अंतर्गत राज्य की अनेक गोशालाओं के लिए अनुदान की व्यवस्था की गई थी जिनसे शुद्ध वंशीय सांड़, गायें इमारतें उन्हें उपलब्ध हुईं और तथा उनकी रूप रेखा में परिवर्तन लाने का प्रयास किया गया। ये गोशालायें बड़े महत्व की हैं। जहां तक देखा गया है इनमें धन का अभाव नहीं है अभाव केवल व्यवस्था का है। गोशालाओं को पिंजरापोल का रूप देने से कदापि लाभ न होगा। इनकी उन्नति इस बात पर निर्भर है कि वे अपने दूध उत्पादन के आंकड़े रखें और प्रयत्न करें कि उनके पास अधिक उत्पादन वाली गायों की संख्या दिन प्रति दिन बढ़े और प्रति वर्ष अधिक से अधिक संख्या में उन्नतिशील बछड़े राष्ट्र को भेंट करें। ऐसा करने से गोशालाओं की आर्थिक स्थिति में वास्तविक सुधार होगा और राष्ट्र की वास्तविक सेवा होगी।

हमारा प्रयास सभी गोशालाओं को उन्नतिशील दुग्धशालाओं में परिवर्तित करना, होना चाहिये—इसी में हमारा कल्याण है।

× × ×

—o—

(पृष्ठ ३७ का शेष)

करोड़ मन खाद का उचित उपयोग किया जाय तो उससे आठ करोड़ मन अतिरिक्त गल्ला उत्पन्न होगा जिसका मूल्य लगभग १२० करोड़ रुपये है। यथार्थ में गोबर धन है और पशु उस धन का खजाना है।

—o—

गोबर ही धन है

जे० एन० बाली

भारत वर्ष कृषि प्रधान देश है। कृषि एवं पशु पालन ही यहाँ की अर्थ व्यवस्था का मुख्य आधार है। यदि हमारे पशु अच्छे होंगे तो खेती अच्छी होगी। खेती अच्छी होगी तो पशु अच्छे होंगे। यदि खेती से हम सदैव फसल लेते रहे और बदले में कुछ न दें तो धीरे-धीरे भूमि की उर्वरा शक्ति समाप्त हो जायगी। जिस प्रकार मनुष्य और पशु के लिए भोजन आवश्यक हैं उसी प्रकार खेती के लिये खाद जरूरी है।

खाद कई प्रकार की होती है जैसे रासायनिक खाद, हरी खाद और गोबर मूत्र की खाद। रासायनिक खाद में काफी धन-व्यय होता है और आगे चल कर इससे भूमि की उर्वरा शक्ति समाप्त हो जाती है क्योंकि रासायनिक खादों से भूमि अम्लीय हो जाती है। हरी खाद बहुत लाभकारी है किन्तु इसमें भूमि घिर जाती है। हरी खाद वही किसान बो सकता है जिसके पास काफी भूमि हो।

सब से अच्छा गोबर होता है। इसमें वे सभी तत्व होते हैं जो भूमि से फसल द्वारा निकल गये हैं।

हमारे पूर्वज गोबर की पूजा करते थे जो आज तक विद्यमान है। इसका तात्पर्य यही है कि गोबर एक बहुमूल्य पदार्थ है। किन्तु अब हम गोबर की उपयोगिता भूल गये। गोबर का महत्व केवल ईंधन के रूप में रह गया है।

उत्तर प्रदेश में अन्य पशुओं के अतिरिक्त लगभग साढ़े तीन करोड़ गाय और भैंस हैं। एक पशु एक वर्ष में लगभग ९० मन खाद देता है। इस प्रकार एक वर्ष में ३१५ करोड़

मन खाद पैदा हो सकती है किन्तु देहातों में लगभग ७५ फीसदी गोबर जलाने में काम आता है जिसकी हमें केवल राख मिलती है और सभी पोषक तत्व जल जाते हैं। पशुओं की खाद में ०·५ से १·५ प्रतिशत नाइट्रोजन, ०·४ से ०·८ प्रतिशत फासफोरिक एसिड एवं ०·५ से १·६ प्रतिशत तक पोटाश होता है। गोबर को जलाने के उपरोक्त सभी तत्व नष्ट हो जाते हैं। यदि हम गोबर का मूल्य उसके अन्दर तत्वों के आधार पर करें तो निम्न प्रकार से वह लगभग दो रुपया प्रति मन बैठता है।

ढाई मन गोबर का विश्लेषण :—

नाइट्रोजन	एक सेर	मूल्य दो रुपया
फास्फोरिक एसिड	१।२ सेर	मूल्य एक रुपया
पोटाश	१।२ सेर	मूल्य दो रुपया
		कुल मूल्य पांच रुपया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गोबर यथार्थ में धन है। महात्मा गांधी कहा करते थे कि गोबर सोना है। यदि गोबर को सोने में बदलना है तो उसे निम्न प्रकार प्रयोग करना चाहिए।

कम्पोस्ट खाद

आवश्यकतानुसार जमीन में गड्ढा खोदना चाहिये। खराब चारा, पत्ते, गोबर, वगैरः सब गड्ढे में भर देते हैं एवं एक इंच मिट्टी की तह उसके ऊपर लगा देते हैं। गर्मी पाकर अन्दर का गोबर सड़ेगा और उसके खर पतवार के बीज समाप्त हो जायेंगे। अन्दर की गर्मी से मक्खी मच्छर वगैरह भी नहीं बढ़ सकते हैं। इस प्रकार की पर्ना खाद खेती के लिए बहुत लाभकारी है। यदि कम्पोस्ट खाद रासायनिक खाद के साथ मिला कर डाली जाय तो रासायनिक खाद से होने वाली सभी हानियां समाप्त हो जायेंगी। कम्पोस्ट खाद भूमि को कई वर्षों तक खाद देती है।

गोबर गैस और खाद:—

हमारे प्रदेश में गोबर का अधिकांश

हिस्सा जला दिया जाता है। यदि उसे जलाने को मना किया जाय तो उत्तर मिलता है कि क्या जलायें ? आप इसके बदले में लकड़ी का प्रबंध कर दीजिए। वास्तव में यह पेचीदा सवाल है। हमारे पास इतनी लकड़ी नहीं है। यही कारण है कि गोबर के महत्व को जानते हुये भी हम उसके जलाने को बन्द नहीं कर पाए हैं। यदि हमारे पास ऐसी योजना हो कि गोबर ईंधन का भी काम दे एवं खाद भी बन जाये तो वह ईश्वरीय वरदान होगा। ईश्वर ने गोबर गैस हमें वरदान स्वरूप प्रदान की है। यदि हम गोबर गैस को संग्रह कर लें तो वह जलाने के काम आयेगी।

आप ने देखा होगा कि कभी-कभी पानी मिले गड्ढों में बुलबुले निकलते रहते हैं यह मीथेन नामक एवं अन्य कई गैसों का मिश्रण है। माचिस दिखाने पर यह गैस जलने लगती है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान देहली ने गोबर गैस संयंत्र बनाये और उन्हें आस पास के गांवों में बांटा। यह गोबर व गैस तैयार करके खाना पकाने व लालटेन जलाने के काम आता है। इस यंत्र के द्वारा गाय के गोबर का ईंधन के रूप में उपयोग करने पर भी खाद के रूप में भी उसकी उपयोगिता नष्ट नहीं होती। यह खाद अन्य खादों की तुलना में अधिक उपयोगी सिद्ध हुई है।

गोबर गैस संयंत्र बनाने की विधिः—

इसका बनाना बहुत आसान है। भूमि में एक कुएं के आकार का पक्का गड्ढा बनाया जाता है। उसके बराबर में एक लोहे के पाइप से गोबर डालने का मार्ग बनाया जाता है जो तल के पास जाकर खुलता है। कुएँ में एक लोहे का ढोल उल्टा लटकाया जाता है और चरखी लगाकर इस पर वजन लटका देते हैं ताकि ड्रम के ऊपर उठने पर वह नीचे को दबा रहे। पाइप द्वारा गोबर छान कर डाला जाता है जो अन्दर जा कर सड़ता है और ड्रम के अन्दर गैस इकट्ठी हो जाती

है और एक नली द्वारा एक विशेष स्टोव अथवा लालटेन में ले जायी जाती है। वहां पर जाकर वह जलने लगती है। उफान लेकर गोबर की खाद ऊपर होकर बहने लगती है जिसे संग्रह कर लिया जाता है और वह खाद बनाने के काम आती है।

गोबर गैस संयंत्र द्वारा बनी खाद से निम्नलिखित लाभ हैं:—

(१) यह शीघ्र बनकर तैयार हो जाती है। कम्पोस्ट बनाने में कई महीने लगते हैं।

(२) इस खाद में मक्खी अन्डे नहीं दे सकती है। इससे मक्खियों की समस्या हल हो जाती है। मक्खियां कम पैदा होंगी।

(३) खाद में नाइट्रोजन वैल्यू अधिक है इससे इसकी उपयोगिता और बढ़ जाती है।

गोबर गैस वास्तव में ईश्वरीय वरदान है। अधिक जानकारी के लिये निदेशक पूसा इन्स्टीट्यूट नई देहली अथवा खादी ग्रामोद्योग कमीशन कानपुर को लिखें।

मुर्गियों का खाद्य पदार्थ:—

पशुओं के पेट में जाकर खाद्य पदार्थ गोबर के रूप में बदलता है। पौष्टिक तत्व आंतों द्वारा चूस लिये जाते हैं, किन्तु फिर भी काफी पौष्टिक तत्व गोबर के साथ बाहर निकल जाते हैं। यदि गोबर को पानी में घोलकर और छान कर मुर्गियों को पिलाया जाय तो वह शीघ्र ही मोटी हो जावेंगी और अधिक अन्डे देंगी। इस प्रकार मुर्गियों के दाने में काफी बचत होगी जो पशुओं को खिलाया जा सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जो गोबर नष्ट कर दिया जाता है वह कितना बहुमूल्य पदार्थ है? गोबर के सदुपयोग से पशुओं की उन्नति होगी, अधिक चारा और गल्ला पैदा होगा। गोबर का जब मूल्य आंका जायगा तो पशु जिसे हम अलाभकारी कहते हैं लाभकारी सिद्ध होगा और पशु पालक पशु पालन कार्य में अधिक रुचि लेंगे। यदि प्रदेश के ३१५

(शेष पृष्ठ ३३ पर)

पशुपालन की योजना में

प्रशिक्षण का महत्त्व

एच० सी० कपूर

बिना ज्ञान के मनुष्य शून्य में विचरण करता है और बिना गुरू के ज्ञान नहीं--यह तो सत्य है। इस सत्य को हमने सच्चाई की कसौटी पर परखा जब पंच वर्षीय योजनाओं का प्रारम्भ हुआ। योजनायें आईं परन्तु उन्हें कैसे कार्यान्वित किया जावे, बड़ा विकट प्रश्न था, एक भारी प्रश्न देश के सामने था कि देश की मनुष्य संख्या बढ़ रही है और बढ़ती हुई जन संख्या के लिए देश में अन्न उत्पन्न नहीं हो रहा है। वैज्ञानिकों के कृषि सम्बन्धी अनुसंधान, जिनके द्वारा खेती की उपज बढ़ सकती है, अपढ़ कृषकों तक पहुँचाना था। इसी आधार पर प्रशिक्षण केन्द्रों का आरम्भ हुआ, जिनमें विभागीय अधिकारियों एवं विकास कार्यकर्ताओं को नये-नये अनुसन्धानों तथा उनके प्रयोगों पर प्रशिक्षण दिये गये ताकि वे उन्हें कृषकों और साधारण जनता तक पहुंचा सकें।

प्रशिक्षण के रूप:--

अनुसंधान कर्ता निरन्तर परिश्रम से काम करता है और देश की उन्नति की नई नई पहलुओं को ढूँढता है और कठिन प्रयासों के उपरान्त उसे सफलता मिलती है। हमारे किसान जो भूमि के कर्णधार हैं, अधिकतर अनपढ़ हैं। अनुसंधान कर्ता के बाद दूसरी सीढ़ी विकास कार्यकर्ताओं की है जिन्हें यह सभी उच्च कोटि के अनुसंधान किसानों तक पहुंचाने तथा उन्हें कार्य रूप में परिणत कराने हैं। किस बात को कैसे रक्खें--कि किसान उसे आसानी से समझ सकें--यही

प्रसार कार्यकर्ता की विशेषता है। उसे यह करने के लिए प्रशिक्षण केन्द्र पर प्राप्त ज्ञान, काम में लाना है। प्रत्यक्ष प्रयोग, चल चित्र प्रदर्शन, सामूहिक गोष्ठी तथा लोगों को उसकी बात का विश्वास-यही उसकी सफलता की कुंजियां हैं। प्रसार कार्यकर्ता यदि ग्रामीण परिवार का अंग बन गया है तो किसान स्वयं निःसंकोच अपनी शंकाओं को उसके समक्ष रख लेंगे और शंकासमाधान होने पर उसे कार्य रूप में परिणत करेंगे अन्यथा शंका बनी ही रहेगी और जिस योजना पर उनका विश्वास न होगा, उसे वे कदापि न अपनायेंगे।

गायों में दूध देने की क्षमता कैसे बढ़ सकती है, इस समस्या का विश्लेषण प्रशिक्षण केन्द्र पर कैसे होता है, निम्न पंक्तियों में प्रस्तुत किया जा रहा है:—

मुख्य ग्राम योजना

गोपालन हमारे देश का प्रमुख धन्धा रहा है। गायों में अधिक दूध की क्षमता को बढ़ाने के लिए मुख्य ग्राम योजना, जो प्रगाढ़ पशु पालन योजना है, का प्रारम्भिक वास्तविक प्रयोग राजकीय पशु प्रजनन केन्द्रों से प्रारम्भ किया गया और धीरे धीरे इस योजना ने अपनी जड़ जमाई और आज हम देखते हैं कि प्रत्येक जिले में ३-४ और पश्चिमी जिलों में इससे भी अधिक केन्द्र खुले हैं। राज्य में इतने केन्द्रों का संचालित होना, इस योजना की सफलता का प्रमाण है और कार्य कर्त्ताओं के कुशल प्रशिक्षण का द्योतक है। प्रत्येक वर्ष गोपाष्टमी का पुण्य पर्व आता है जो हमें इस बात की याद दिलाता है कि गोवंश हमारी सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था का मुख्य अंग है।

राष्ट्र के स्वास्थ्य की समस्यायें उचित गोपालन से सम्बन्ध रखती हैं। राष्ट्र के युवकों का शारीरिक और मानसिक विकास दुग्ध और दुग्ध से प्राप्त पौष्टिक तत्वों की अधिकता पर निर्भर है और यह तभी सम्भव है जब गोपालन वैज्ञानिक नियमों पर आधारित किया

जावे। जन साधारण को यह ज्ञान होना आवश्यक हो गया है कि गाय में दूध देने की क्षमता उसके प्रजनन, आहार और व्यवस्था पर निर्भर है। तीनों बड़े महत्व पूर्ण विषय हैं और आपस में विशेष रूप से सम्बन्धित हैं। प्रसार कार्यकर्ता को इन तीनों विषयों की भली भांति जानकारी होती है।

प्रजननः—

गोपालन में सांड़ का बड़ा महत्व है। सांड़ शुद्ध वंशीय, अच्छे शारीरिक बनावट वाला तथा उत्पादन में अधिक क्षमता वाले मां-बाप से उत्पन्न होना चाहिये। सांड़ छोड़ते समय इन तीन बातों पर भली भांति विचार करना आवश्यक है। इसके उपरान्त यह भी देखने की आवश्यकता होती है कि उससे उत्पन्न बछियों में उनकी माताओं से अधिक दूध व उत्पादन होना चाहिये।

आहारः—

अच्छे गुण-अच्छे वंशों से ही प्राप्त हो सकते हैं। अधिक उत्पादन की क्षमता-ऐसे ही मां-बाप की संतान पर संभव है परन्तु अच्छे गुणों को पूरी तरह से विकसित होने के लिये स्वस्थ शरीर की आवश्यकता है। स्वस्थ शरीर को बनाये रखने के लिये गऊ के आहार में वे सभी पदार्थ होने आवश्यक हैं जिनमें उसके शरीर की पूर्ति होती है। प्रोटीन, फैट मिनरल्स और विटामिन, इन सभी की पूर्ति के लिये हरा चारा और विशेष कर फलीदार चारे, चोकर, दालों के दाने तथा चूनी, खलियां और नमक सम्मिलित हैं।

फलीदार चारों का जैसे बरसीम, चना, मटर, लोबिया, ग्वार का विशेष महत्व है क्योंकि इनमें पौष्टिकता प्रोटीन, कैल्शियम और फास्फोरस अधिक मात्रा में होते हैं। सभी चारे फूलने की अवस्था से पूर्व प्रयोग में लाने चाहिये क्योंकि तब पौधों में अधिक पचने वाली पौष्टिकता होती है। पौष्टिकता के लिये मुलायम हरे चारे दूध देने वाले पशुओं के लिये बारह महीने होने चाहिए। फलीदार

चारों के अतिरिक्त मक्का, ज्वार, जई तथा घासें-नैपियर गिनी, पैरा और अंजन हो सकता है।

खली:—

अलसी, बिनौला, मूंगफली, तिल और सरसों की खली आवश्यक है। गेहूँ या चावल का चोकर तथा दालें और उनकी चूनियां गाय के आहार में आवश्यक अंशों की पूर्ति करते हैं। गौ के आहार में लवणों का विशेष महत्व है। कैल्शियम, फास्फोरस शरीर के ढांचे और दांतों को मजबूत रखते हैं। उनकी पूर्ति फलीदार चारों से, खली से, गेहूँ के चोकर से तथा हड्डी के चूरे से होती है। मांस पेशियां तथा खून के बनाने और आन्तरिक क्रियाओं को सक्रिय रखने के लिये तथा बनाने में यह लवण सहयोग देते हैं।

लवणों की कमी के कारण शरीर में अनेकों रोग हो जाते हैं। उनकी पूर्ति के लिये बरसीम के एक टन चारे में २६ पौंड फास्फोरस और ३ पौंड कैल्शियम की मात्रा होती है। इस प्रकार मक्खनियां दूध के एक टन में (सूखे पदार्थ के आहार पर) २६ पौंड कैल्शियम, २०.५ पौंड फास्फोरस होता है। एक टन अलसी की खली में ८ पौंड कैल्शियम, १७.५ पौंड फास्फोरस होता है। एक टन बिनौला की खली में ४.५ पौंड कैल्शियम और २४.५ पौंड फास्फोरस होता है। लौह लवण खून के बनने के लिये आवश्यक है और गाय के गाभिन तथा दूध देने की अवस्थाओं में अति आवश्यक है। पत्ती वाले हरे चारों में तथा तिलहन के बीजों के बाहरी छिलके में जो पेरने के साथ खली के रूप में गाय को प्राप्त हो जाता है, लौह की काफी मात्रा होती है। परन्तु लौह के शोषण के लिये कापर और कोबाल्ट न्यूनतम मात्रा में होना आवश्यक है। इसी प्रकार गौ को स्वस्थ रखने के लिये भोजन के अतिरिक्त विटामिन की आवश्यकता होती है। मुलायम तथा पौष्टिक घासों वाले चरागाह इनकी पूर्ति करते हैं।

व्यवस्था:--

उत्तम वंश, उत्तम स्वास्थ्य, उत्तम रहने की व्यवस्था अधिक उत्पादन में सहायक हैं। गौ के रहने का स्थान, स्वच्छ हवादार होना चाहिए तथा नित्य प्रति त्वचा की सफाई गौ के शरीर को स्वस्थ रखने के लिये अति सहायक है।

अनुपयोगी पशुओं की छंटनी:--

उपयोगी पशुओं की संख्या बढ़ाने के लिये अनुपयोगी पशुओं की छंटनी करनी पड़ेगी। जैसे जैसे अनुयोगी पशुओं की संख्या कम होगी वैसे वैसे अधिक उत्पादन वाली गायों की संख्या बढ़ेगी। इस कार्य के लिये हमें अपनी रूढ़ियों का त्याग करना पड़ेगा और गऊ की उत्पादन क्षमता बढ़ा कर उसे कामधेनु का रूप देना होगा।

पशुपालन की योजनाओं को सुचारु रूप से कार्यान्वित करने के लिये यह आवश्यक है कि विकास कार्य-कर्ताओं के प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था हो। प्रशिक्षण केन्द्रों पर योजनाओं का पूर्ण विश्लेषण आवश्यक है। वैज्ञानिक अनुसन्धान द्रुत गति के साथ चल रहे हैं और सेवा कालीन कार्य-कर्ताओं की शिथिलता दूर करने के लिये उन्हें नये-नये अनुसंधानों से अवगत कराना अति आवश्यक है। देश की निर्धनता को दूर करने के उपायों में एक सरल उपाय यह भी है कि गाय की उत्पादन क्षमता बढ़ाई जावे जिससे किसानों की आर्थिक व सामाजिक दशा उच्च हो सके।

—०—

गायों में प्रसूति तथा जननेन्द्रिय के

रोगों का नियंत्रण तथा दुग्धोत्पादन

महेन्द्र प्रताप जौहरी

गाय एक मादा प्राणी है जिसका कार्य बछड़े बछियों को जन्म देने का है। जन्म देने के उपरान्त ही बच्चों के लिये इसके थन में दूध उतरता है, यह दूध प्राकृतिक नियमानुसार इसके बच्चों का भोजन है। ज्यों ज्यों बच्चा बढ़ता है, दूध भी बढ़ता जाता है। बच्चा धीरे धीरे अन्य पदार्थ खाना शुरू कर देता है, घास खाने लगता है, इसके आमाशय में परिवर्तन होता है और इस प्रकार बच्चे को दूध की आवश्यकता कम होती जाती है। गाय भी दूध कम देने लगती है और कुछ दिनों के लिये बिलकुल ही दूध नहीं देती। दुग्धोपादन में तथा गाय के गर्भाधान क्रम में एक अटूट सम्बन्ध है। गाय फिर गर्भ धारण करती है और यह क्रम उसके जीवन काल में चलता रहता है। गाय में वे सब प्रसूति तथा जननेन्द्रिय के रोग हो सकते हैं जो किसी भी अन्य मादाओं में होते हैं।

यह विज्ञान का युग है। गवेषणा तथा अनुसन्धान से मनुष्य ने हर एक क्षेत्र में उन्नति की है, कभी-कभी यह उन्नति पारस्परिक विरोध का रूप भी ले लेती है। कृषि में कुछ लोगों का मत है कि यंत्रों का अधिक प्रयोग करना चाहिये, कदाचित इस मत में शंका होते हुए भी, आज से ५० वर्ष बाद भारतीय कृषि में यंत्रों का अधिक उपयोग होने लगे। पिछले २५ वर्षों में मोटर का अधिक उपयोग होने से घोड़ों को पालने का रिवाज कम हो गया है। यह तो निश्चय सत्य है कि गाय में

दूध न होगा यदि वह गर्भ धारण न करे क्योंकि प्रसूति के बाद ही उसमें प्राकृतिक नियमानुसार दूध होता है। पशु विशेषज्ञों ने उन गायों का चुनाव किया जो अपने बच्चों की आवश्यकता से अधिक दूध देती थीं, ऐसी गायों का चुनाव करते रहने से अच्छी अच्छी नस्लें गायों की बनीं जो दूध अधिक देती हैं। अधिक दूध होने से गायों में, जैसा अन्य मादाओं में देखा गया है, गर्भ धारण होने में कठिनाई होती है। इसलिये अब चुनाव करते समय पशु में केवल दुग्धोत्पादन ही नहीं देखा जाता वरन् उसकी प्रजनन शक्ति व गर्भ धारण करने की क्षमता पर भी ध्यान दिया जाने लगा है।

गायों में प्रसूति के रोग होने से गायों को बहुत कठिनाई होती है। उनका स्वास्थ्य गिर जाता है। स्वास्थ्य गिर जाने से दूध भी कम हो जाता है। प्रसूति तथा जननेन्द्रिय के रोगों पर नियंत्रण कर लेने से दुग्धोत्पादन अधिक होगा एवं गाय आर्थिक दृष्टि से अधिक उपयोगी होगी। गर्भाशय के रोग, गाय के नियत समय में हरी (ऋतुमयी) होने का क्रम, प्रसव के रोगों आदि विषयों पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। पशु पालकों तथा पशु चिकित्सकों का भी शनैः शनैः इस ओर अब अधिक ध्यान जाने लगा है। पशु चिकित्सा के कालेजों में भी एक अलग पीठ की स्थापना की जा चुकी है जो प्रजनन के इस विषय पर अधिक ध्यान दे। ऐसा करने से कुछ वर्षों के बाद इन कालेजों के स्नातकों में भी इस विषय की जानकारी हो जावेगी जो अभी तक नहीं के बराबर थी।

मेडिकल कालेजों में स्त्री सम्बंधी रोगों के लिये तथा प्रसूति की शिक्षा के लिये पहिले ही से अच्छी व्यवस्था थी जो अब वेटेरीनरी कालेजों में गायों के लिये पूरी की जा रही है। आशा है पशु चिकित्सा क्षेत्र में यह विषय एक प्रमुख स्थान ग्रहण करेगा और इसी में देश तथा गो जाति का लाभ निहित है।

क्रास ब्रीडिंग योजना

चौहड़पुर देहरादून

एस० एस० राजकुमार

उत्तर प्रदेश के पहाड़ी भाग में पाए जाने वाले गाय, बैल अपनी अनुपयोगिता के कारण किसानों पर भार स्वरूप बनते जा रहे हैं। छोटा नाटा कद, देर में युवा होना, बहुत ही कम करीब-करीब २ या २॥ पौंड प्रतिदिन दूध देना, भारी काम न कर पाना, यह हैं खराबियां स्थानीय पशुओं की, जिनसे किसान को छुटकारा दिलाना है। इसके लिए आवश्यक है कि एक ऐसी योजना लाई जाये जिससे जल्दी से जल्दी और ज्यादा से ज्यादा गायों में दूध बढ़ जाये और बैल अधिक काम कर सकें और साथ ही साथ इन पशुओं के गुण, रोग अवरोधक क्षमता तथा मजबूती भी कायम रह सके।

मैदानी क्षेत्रों के लिए तो कुछ हद तक विभाग को हरियाना जाति के रूप में समस्या का हल मिल चुका है और उस दिशा में प्रगति भी हो रही है परन्तु इन पहाड़ी क्षेत्रों की समस्या का हल विभाग के लिए एक प्रश्न था क्योंकि इन क्षेत्रों की समस्यायें मैदानी क्षेत्रों से सर्वथा भिन्न हैं। यहां के निवासियों की सर्व-प्रथम आवश्यकता दूध की है। इनको बड़े कद के बैल नहीं चाहिए। भौगोलिक स्थिति एवम् छोटे-छोटे खेत होने के कारण नाटे मजबूत पशु जिनकी खाने की क्षमता कम एवम् काम करने की क्षमता अधिक हो, ही उपयुक्त हो सकते हैं। भारतीय नस्लों में साही-वाल, थरपारकर, सिन्धी अधिक दुधारु हैं लेकिन थरपारकर व साहीवाल पशु बड़े डील-डौल के होने के कारण पहाड़ी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त नहीं हैं और सिन्धी स्थानीय किसानों में

पर्याप्त लोक-प्रियता न प्राप्त कर सकीं। इसलिए विदेशी नस्लों की ओर ध्यान गया और उनमें जर्सी को उपयुक्त समझा गया क्योंकि :—

१—इस जाति की गायें ज्यादा दूध देती हैं, अधिक दिनों तक देती हैं और इनके दूध में चिकनाई (फैट) का अंश ६ प्रतिशत है।

२—इस जाति का कद भी नाटा है और वजन भी करीब ८०० पौंड है।

३—अन्य विदेशी नस्लों की अपेक्षा इसमें गर्मी ज्यादा सहन करने की क्षमता है।

४—कम आयु में युवा होकर दो वर्ष की उम्र में बच्चा देने योग्य हो जाती है।

५—सदियों से सावधानीपूर्वक प्रजनन किये जाने के कारण अपने बच्चों में गुण पहुँचाने की क्षमता इस जाति के सांड़ों की एक विशेषता है।

यद्यपि एग्रीकल्चर इंस्टीट्यूट नैनी एवम् मिलिट्री डेरी फार्मों पर किये गये परीक्षण सन्तोषजनक थे, फिर भी सम्पूर्ण पहाड़ी इलाकों में इस प्रजनन विधि को फैलाने के पूर्व उचित समझा गया कि पहले एक छोटे से क्षेत्र में इस योजना को चला करके देख लिया जाये। इस कार्य के लिए चोहड़पुर व निकटवर्ती क्षेत्र चुना गया और यह कार्य द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना काल में प्रारम्भ किया गया।

उद्देश्यः— इस योजना के उद्देश्य निम्नलिखित हैं:—

१. जर्सी सांड के वीर्य से कृत्रिम गर्भाधान विधि द्वारा स्थानीय गायों को गर्भित कर अच्छे बच्चे लेना।

२. यह पता लगाना कि कितनी पीढ़ी तक दोगली नस्ल का प्रजनन किया जाये जिससे बच्चों में मातृ एवम् पितृ वंश के गुणों का अधिकाधिक समावेश हो अर्थात् ज्यादा से ज्यादा दूध देने की क्षमता के साथ साथ रोग क्षमता व मजबूती भी स्थिर रहे।

३. वीर्य के गुण पर एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने, कुछ

दिनों तक रखने आदि के प्रभाव की जांच करना।

कार्य क्षेत्र एवं प्रगति–

उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिये देहरादून चकराता मार्ग पर जमनीपुर से लेकर बाड़वाला तक ३२ ग्राम लिए गये।

बंगलोर तथा कलकत्ता से भेजे गए जर्सी सांड़ के वीर्य अथवा उसके अभाव में कालसी स्थित जर्सी सांड़ के वीर्य का प्रयोग कर कृत्रिम गर्भाधान प्रणाली द्वारा गाय गर्भित की गई। किसानों का कुछ सहयोग मिला और कार्य में प्रगति दिखाई पड़ी। १९५७-५८ में जहां १८९ गायें गर्भित की गईं वहां १९६१-६२ में ५६६ गायें गर्भित की गईं। १९५८ से लेकर १९६२ तक ४७३ दोगली नस्ल के बच्चे पैदा हुए। इन बच्चों में रोग क्षमता तथा मजबूती कायम रखने के लिए ३ उपकेन्द्रों की पहली पीढ़ी के बच्चों को जर्सी से संयोग कराया जायगा तथा दूसरी पीढ़ी को हरियाना से कराया जायेगा। किसानों ने फल अपनी आंखों से देख लिया है। अब आशा है कि प्रगति तीव्रतर हो जायेगी। उनकी यह मिथ्या धारणा कि बैल कूबड़ न होने से बैलगाड़ी व हल के लिए उपयुक्त नहीं हो सकेंगे इन बैलों को हल व गाड़ी में चलते हुए देख कर दूर हो रही है। कुछ ओसरें गर्भित हुईं, बच्चे दिये और दूध देने लगीं। इन ओसरों की बनावट किसानों को पसन्द आई और उनमें ८ गुना तक ज्यादा दूध पाकर प्रसन्नता हुई जैसा कि नीचे दी हुई तालिका से स्पष्ट हो जाता है:

नाम मालिक	ग्राम	दोगली गाय का दैनिक दूध (बेटी)	देशी गाय का दैनिक दूध (मां)
श्री केशीराम	चोहड़पुर	१९–३० पौंड	२–१७ पौंड
श्री रामलाल सोनी	—	१३–०० ,,	४–११ ,,
श्री हुक्मचन्द	लक्ष्मनपुर	१२–८० ,,	३–०० ,,

नाम मालिक	ग्राम	दोगली गाय का दैनिक दूध (बेटी)	देशी गाय का दैनिक दूध (मां)
श्री ऐल्फिक	चिरंजीपुर	१४–६० ,,	५–५० पौंड
श्री हन्नूक	कल्याणपुर	११–८६ ,,	४–५० ,,

इस योजना की प्रगति और भी तीव्रतर हो जाती यदि मार्ग में कुछ रुकावटें न होतीं जैसे:—

१—कृत्रिम गर्भाधान प्रणाली का धार्मिक आधार पर विरोध। इस दिशा में समझाने बुझाने से कुछ अंश तक सफलता हो रही है।

२—यह धारणा कि बिना कूबड़ वाले बैल हल व गाड़ी के लिए अनुपयुक्त होंगे। अन्य स्थानों में कार्य-रत बैलों की फोटो दिखाकर एवं वास्तविक रूप में दोगले बैलों को गाड़ी में चलवा कर यह धारणा दूर की जा रही है।

३—बछड़ों को ३-४ वर्ष की आयु में बधिया कराना। इस प्रथा की खराबियां बताकर इसे दूर करने में कुछ सफलता तो मिल चुकी है किन्तु यह अनुभव किया जा रहा है कि यदि अनुपयोगी बछड़ों को कानूनन छोटी आयु में बधिया कराने का एक्ट बन जाये तो सफलता शीघ्रता से मिल सकेगी।

४—पर्याप्त मात्रा में ताजा वीर्य का अभाव। इस समय कलकत्ता से जर्सी सांड़ का वीर्य आने में ४० घंटे लग जाते हैं। कालसी में एक सांड अवश्य है किन्तु बूढ़ा है। इधर कार्य भी बढ़ रहा है अतः आवश्यकता है कि कालसी पर कम से कम दो अच्छे जर्सी सांड़ों का प्रबंध हो।

—०—

उत्तर प्रदेश की स्वीकृत
गो जातियां



१. हरियाना

इस जाति का मूल क्षेत्र रोहतक, हिसार, गुड़गाँव, करनाल का कुछ भाग और दिल्ली प्रदेश है।

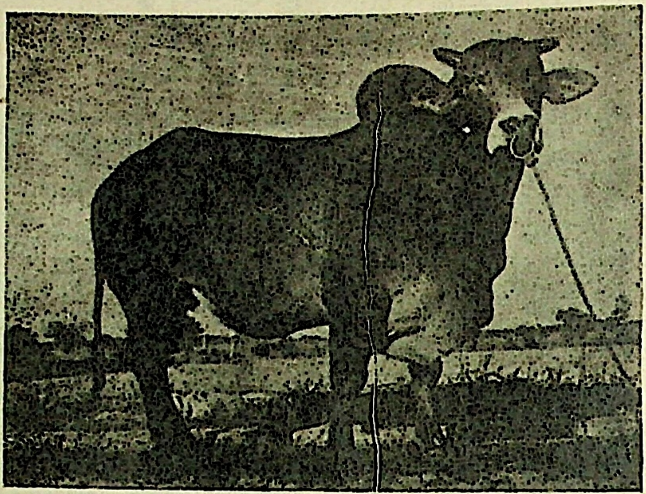
इन पशुओं का मुंह संकरा, माथा चपटा, सींग व कान छोटे, कद मझोला, गर्दन दृढ़, डिल और कमरी छोटी तथा मुतान खिंचा हुआ होता है। गायों के ऐन सुविकसित होते हैं। सामान्यतः इनका रंग सफेद या हल्का धूसर होता है। इन पशुओं का सिर, गर्दन, डिल और पिछला भाग गहरे धूसर रंग का होता है।

यह जाति दूध तथा परिश्रम दोनों के लिए उपयुक्त है। एक ब्यांत में २००० से ३००० पौंड दूध देती है। कोई कोई गायें ८४०० पौंड तक दूध देती हैं।

हरियाना जाति के पशु बाबूगढ़, माधुरीकुंड तथा मथुरा के सरकारी फार्मों पर रखे गये हैं।

इस जाति के पशु केवल कुछ स्थानों को छोड़कर जहां अन्य जाति के पशु रखे जायेंगे, सारे प्रदेश के लिये स्वीकृत किये गये हैं।

—०—



२. साहीवाल

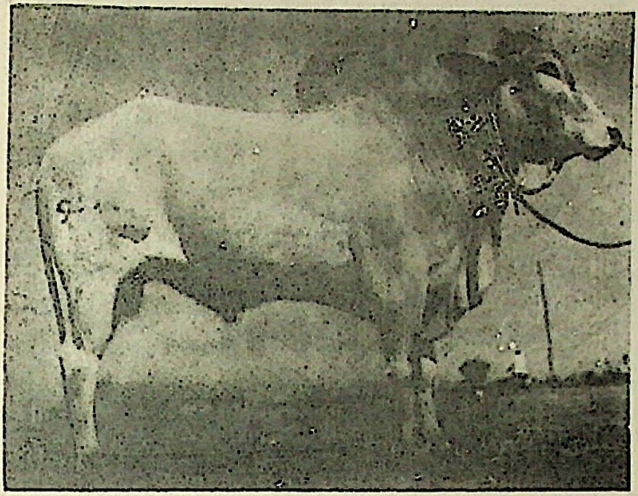
इस जाति का मूल क्षेत्र पंजाब का मध्य तथा दक्षिणी सूखा भाग, विशेषकर जिला मिंटगोमुरी है जो इस समय पाकिस्तान में है।

इस जाति के पशु साधारणतः लम्बे और मांसल होते हैं। इनकी टांगे छोटी होती हैं और यह स्वभावतः कुछ आलसी होते हैं। इनके सींग बहुत छोटे, माथा चौड़ा तथा शरीर भारी भरकम होता है। इनकी खाल चिकनी तथा ढीली होती है। नर पशुओं में डिल काफी बड़ा होता है, कमरी तथा मुतान बहुत बड़ा और लटकता रहता है। इनकी पूंछ लम्बी होती है। इनका रंग अधिकतर लाल होता है पर बहुत से पशुओं का रंग हल्का लाल होता है।

यह दुधारू जाति है। ३०० दिन के ब्यांत में इनका औसत उत्पादन १००७० पौंड तक है।

इस जाति की गायों को प्रतापगढ़ में राजा भदरी के बैंती फार्म व गोरखपुर के सरइया डेरी फार्म के अतिरिक्त लखनऊ के सरकारी पशु प्रजनन फार्म, चक गंजरिया में उचित प्रजनन और विकास के लिए रखा गया है।

(शेष पृष्ठ ५७ पर)



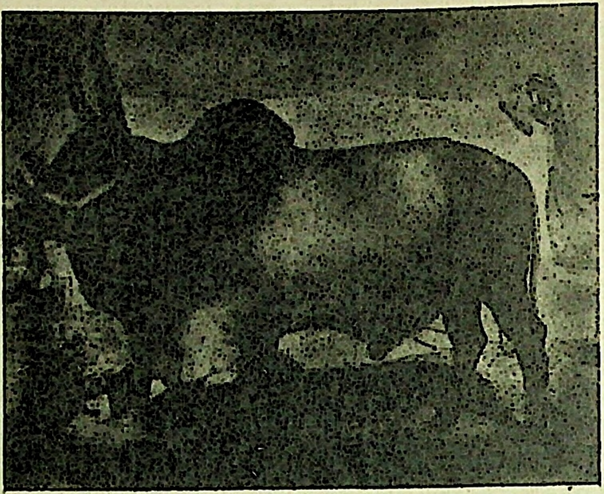
३. गंगातीरी

इस जाति का मूल क्षेत्र शाहाबाद जिले का गंगा-खादर क्षेत्र, बिहार के सारन जिले तक और बलिया तथा गाजीपुर में गंगा और घाघरा का दोआबा है।

ये पशु मंझोले कद के तथा शांत स्वभाव के होते हैं। इनका माथा चौड़ा, सींग मोटी, गर्दन छोटी तथा कमरी औसत आकार की या मोटी होती है। टांगें शरीर के अनुपात से तथा दूर-दूर होती हैं। बैलों के डिल और गायों के ऐन पूर्ण विकसित होते हैं। इनका सामान्य रंग गहरा धूसर या सफेद होता है।

इस जाति के बैल परिश्रम का काम करने के लिए प्रसिद्ध हैं। बिहार तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश में यह गाय दुधारू समझी जाती है और प्रतिदिन औसतन ८ पौण्ड दूध देती है। इन्हें कम खर्च पर भी रखा जा सकता है।

इस जाति के पशु, बनारस में राजकीय यांत्रिक फार्म, आराजी लाइन्स और गाजीपुर की मोहम्मदी तहसील के लिए स्वीकृत किये गए हैं।



४. कनकथा

इस जाति का मूल स्थान बुन्देलखंड है पर यह बांदा जिले में केन नदी के आस-पास तथा मध्य भारत के बन्ना, विजयगढ़, चरखेरी तथा अजयगढ़ रियासतों में भी पाई जाती है।

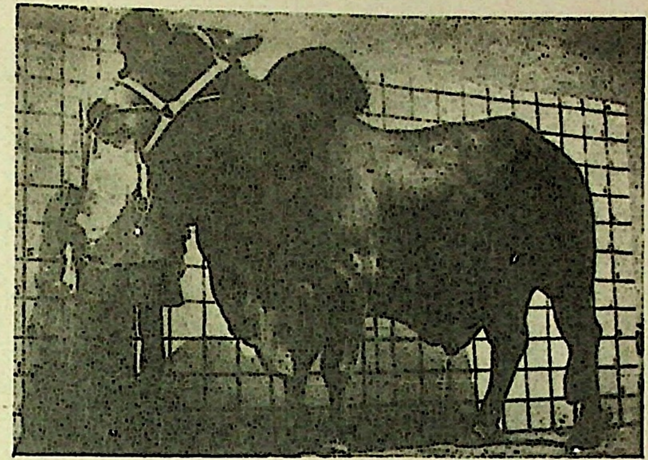
इन पशुओं का आकार छोटा, पीठ सीधी, टांगें छोटी पर मजबूत, माथा कुछ बीच में धंसा हुआ, सींग नुकीले, कान छोटे और नुकीले तथा पूंछ औसत लम्बाई की होती है। पशुओं का रंग धूसर गहरा, धूसर तथा सफेद चित्तीदार होता है। यह जाति दोनों काम के लिए उपयुक्त है। बैलगाड़ी खींचने तथा खेती के हल्के काम के लिए उपयुक्त है। गाय अधिक दूध नहीं देती है।

कनकथा जाति के कुछ पशु झांसी जिले के राजकीय यांत्रिक फार्म, सईदपुर में रखे गये हैं।

बुन्देलखंड के कुछ विशेष भागों जैसे महरौनी व नारायणी तहसीलों (मऊ प्रगाढ़ विकास केन्द्र को छोड़ कर) के लिए इस जाति के पशु स्वीकृत किये गये हैं।

× × ×

—०—



५. सिंधी

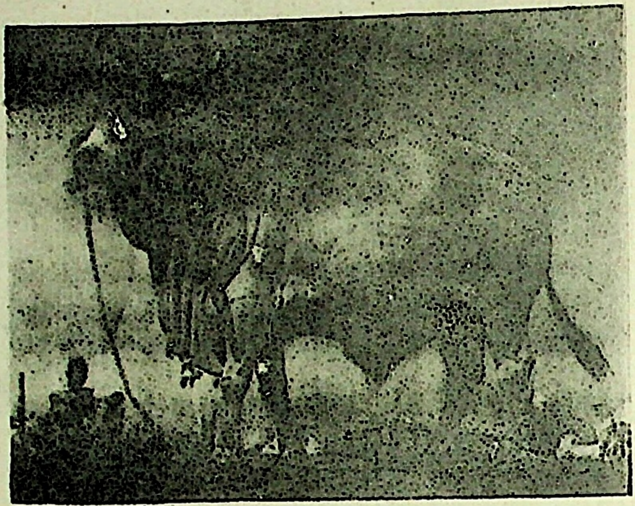
इस जाति के पशुओं का मूल स्थान करांची और हैदराबाद के आस-पास है।

शरीर और सिर औसत आकार का तथा सुविकसित होता है। सींग मोटे तथा औसत आकार के होते हैं जिनकी नोकें गुट्ठल होती हैं। इनके कान नीचे झुके हुये, डिल, कमरी तथा मुतान पूर्ण विकसित होते हैं। गायों में ऐन बहुत बड़े होते हैं और अधिक दूध देने वाली गायों में यह लटकने लगते हैं। इस जाति का प्रमुख रंग गहरा लाल है। पर हल्के पीले से लेकर गहरे कत्थई रंग के पशु भी पाये जाते हैं।

यह पशु शांत स्वभाव के होते हैं और दुग्ध व्यवसाय के लिए पूर्ण उपयुक्त हैं। गायें ३०० दिन के ब्यांत में १२००० पौंड तक दूध देती हैं। बैल खेतों में तथा सड़कों पर काम करने के लिए उपयोगी हैं और वे अपने को किसी भी स्थान की जलवायु तथा भूमि के अनुकूल बना लेते हैं।

इस जाति के पशु, कालसी पशु प्रजनन फार्म, देहरादून पर रखे गये हैं।

देहरादून जिले के ३००० फुट से ऊँचे भाग और इलाहाबाद शहर में यह पशु रखे जायेंगे।



६. थरपारकर

इस जाति का मूल स्थान दक्षिणी पूर्वी सिंध है जो इस समय पाकिस्तान में है।

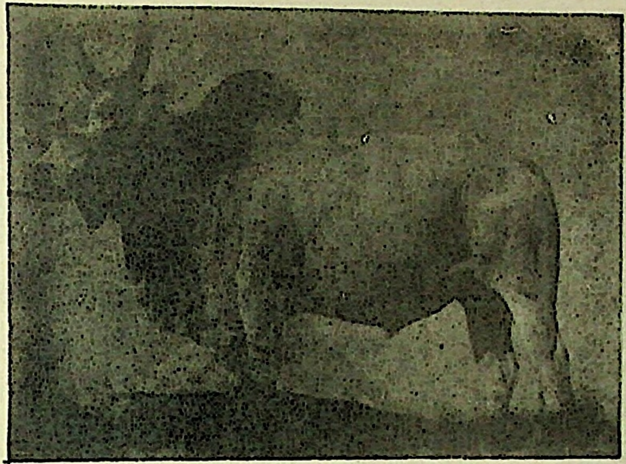
ये पशु मझोले कद के होते हैं। इनका मुंह लम्बा और माथा कुछ उभरा होता है। सींग मझोले और कान लम्बे तथा झुके हुए होते हैं। डिल, मुतान तथा कमरी साधारण होती है। सामान्यतः इनका रंग सफेद होता है या पीठ पर धूसर रंग की धारी पड़ी होती है।

गायें दुधारु होती हैं, बैल खेती तथा गाड़ी दोनों ही कामों के लिए उपयुक्त होते हैं। इन्हें कम खर्च पर भी रखा जा सकता है। २८६ दिन की ब्यांत में ४३५० पौंड तक दूध दिया है और ३०५ दिन के ब्यांत में ६६५० पौंड दूध प्राप्त हुआ है।

राजकीय यांत्रिक फार्म, भरारी (झांसी) पर इस जाति के शुद्ध वंशीय बछड़ों को झांसी तहसील में सांड़ बांटने के लिए रखा गया है।

इस जाति के पशु, मऊ, प्रतापगढ़ विकास केन्द्र, जिला बांदा के लिए स्वीकृत किए गए हैं।

× × ×



७. खेरीगढ़

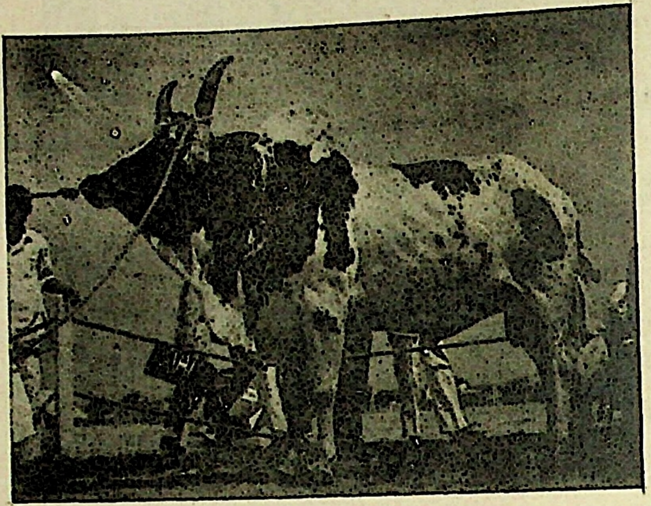
यह जाति उत्तर प्रदेश के लखीमपुर जिले के खेरीगढ़ परगना में पाई जाती है।

इन पशुओं का मुंह संकरा, सींग लम्बे तथा पतले, आंखें चमकदार, कान और गर्दन छोटी होती हैं। नर पशुओं में डिल काफी विकसित है, मुनान कुछ खिंचा हुआ और पूंछ लम्बी होती है। साधारणतः इनका रंग सफेद होता है।

बैल साधारण मेहनत के काम तथा गाड़ी के उपयुक्त हैं। गायें कम दूध देती हैं। ये पशु छुटे रह कर चरना अधिक पसंद करते हैं और तराई क्षेत्र के लिए उपयुक्त हैं।

इस जाति के पशु सरकारी पशु प्रजनन फार्म, मांझरा परगना खेरीगढ़ में रखे गये हैं।

यह जाति लखीमपुर (सिवाय मोहम्मदी तहसील), जिला बहराइच (सिवाय कैसरगंज तहसील), गोंडा (सिवाय गोंडा और तरबगंज तहसील), बस्ती (सिवाय हरइया, बस्ती और खलीलाबाद तहसील), जिला देवरिया (सिवाय देवरिया तहसील), गोरखपुर (सिवाय बांसगांव और गोरखपुर तहसील), घूमने फिरने वाले पशु पालकों को तथा अन्य व्यक्तियों को यदि वे चाहें तो दिये जायेंगे।



८. पंवार

यह जाति पीलीभीत जिले की पूरनपुर तहसील तथा लखीमपुर खीरी के उत्तरी पश्चिमी भाग में पाई जाती है।

इन पशुओं का मुंह सकरा, कान छोटे, आंखें चमकदार तथा बड़ी, सींग लम्बे तथा खड़े होते हैं। इन पशुओं का शरीर कुछ लम्बा तथा पूंछ लम्बी होती है। इनका सामान्य रंग काला तथा सफेद होता है।

गायें कम दूध देती हैं। इस जाति के बैल अपनी चाल तथा शक्ति के लिए प्रसिद्ध हैं और यह जोताई तथा भार वाहन दोनों के ही उपयुक्त हैं। यह पशु स्वच्छंद रूप से चरना अधिक पसंद करते हैं और ५ वर्ष पर पूर्ण युवा हो जाते हैं।

इस जाति के कुछ पशु नैनीताल जिले के सरकारी पशु प्रजनन फार्म, हेमपुर में रखे गये हैं।

पंवार जाति पीलीभीत (सिवाय बीसलपुर तहसील), शाहजहांपुर जिले की पवाया तहसील, नैनीताल जिले की कीछा और काशीपुर तहसीलों के घूमने फिरने वाले पशुपालकों को तथा अन्य व्यक्तियों को, यदि वे चाहें तो दिये जायेंगे।

पंजीयित संख्या—ए १६८६

शीघ्र ही प्रकाशित हो रही है

कृषि सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी सामग्री से सुसज्जित

कृषि डायरी

१९६३

मूल्य केवल—१ रुपया

अपनी प्रति के लिए अपने जिले के जिला कृषि अधिकारी

अथवा

उपनिदेशक

प्रसार, शिक्षा एवं प्रशिक्षण ब्यूरो, कृषि विभाग, उत्तर प्रदेश

६ युनिवर्सिटी रोड, लखनऊ को लिखें

शेर सिंह, उपनिदेशक, प्रसार, शिक्षा एवं प्रशिक्षण ब्यूरो, कृषि विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसार, शिक्षा एवं प्रशिक्षण ब्यूरो प्रेस लखनऊ में मुद्रित तथा प्रकाशित

प्रधान सम्पादक : शेर सिंह

सम्पादक : रामकृपाल द्विवेदी